* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

(संस्करण १,८०,०००)

## विषय-सूची

कल्याण, सौर आषाढ़, वि॰ सं॰ २०४८, श्रीकृष्ण-संवत् ५२१७, जुलाई १९९१ ई॰



### चित्र-सूची



प्रत्येक साधारण अङ्कका मूल्य
भारतमें २.५० रु॰
विदेशमें २० पेंस

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

कल्याणका वार्षिक मूल्य
(डाक-व्ययसहित)
भारतमें ५५.००रु॰
विदेशमें ५ पौंड
अथवा ८ डालर

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
रामदास जालान द्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

कुण्डलिनीशक्ति-स्वरूपा भगवती ललिता

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

# कल्याण

विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः।
क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥

वर्ष ६५ } गोरखपुर, सौर आषाढ़, वि॰सं॰ २०४८, श्रीकृष्ण-सं॰ ५२१७, जुलाई १९९१ ई॰ { संख्या ४
पूर्ण संख्या ७७३

## कुण्डलिनीशक्ति-स्वरूपा भगवती ललिताका ध्यान

सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुर-
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम्।
पाणिभ्यां मणिरत्नपूर्णचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थसव्यचरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम् ॥

जिनके शरीरका वर्ण सिन्दूरके समान लाल है एवं जिनके तीन नेत्र हैं तथा (जिनके शिरोभागपर) माणिक्य-मणि-जटित मुकुटके साथ-साथ चन्द्रमा भी सुशोभित हो रहा है, जो मन्द-मन्द मुसकरा रही हैं और जिनका वक्षःस्थल सुपुष्ट है, जो अपने दोनों हाथोंमें क्रमशः मणि एवं रत्नोंसे पूर्ण पात्र तथा रक्त कमल धारण किये हुई हैं, जिनका स्वरूप अत्यन्त सौम्य है और बायाँ चरण रत्नपूर्ण घड़ेपर स्थित है, उन पराम्बा भगवती ललिताका (इस रूपमें) ध्यान करना चाहिये।

# कल्याण

शुभको देखो, शुभको सुनो, शुभका स्पर्श करो, शुभका स्मरण करो। शुभ वही है जो चित्तमें निर्मलता, प्रसाद, शान्ति, सद्भाव, विषय-वैराग्य और प्रभु-भक्तिको उत्पन्न करके चित्तको प्रभुकी ओर लगा दे। इसके सिवा और जो कुछ है, सभी अशुभ है।

दुर्गुणों और दुष्कर्मोंके भयानक परिणामोंको सोचो। नाना प्रकारके शारीरिक रोग, मानसिक पीड़ा, स्मरण-शक्तिका विनाश, उत्साहभङ्ग, विषाद, शोक, महान् निन्दा, सुख-सौन्दर्यका नाश, दण्ड, अकालमृत्यु, नरकोंकी प्राप्ति और पशु-पक्षी आदि योनियोंमें जन्म आदि सब दुर्गुण और दुष्कर्मोंके ही परिणाम हैं। तुम देखते हो—गरीब कमजोर बैलोंको कितना बोझ उठाना पड़ता है, भूख-प्यास सहते हुए डंडोंकी मार खानी पड़ती है—यह सब मनुष्य-जीवनके दुष्कर्मोंका—पापोंका ही परिणाम है। याद रखो—पाप करते समय जितना सुख माना जाता है, उससे बहुत ही अधिक अत्यन्त भयानक दुःख उसके परिणाममें भोगना पड़ता है।

साथ ही सद्गुण और सत्-कर्मसे प्राप्त होनेवाले लाभोंपर विचार करो। सद्गुणी और सदाचारी पुण्यात्मा पुरुषोंकी जीवनियाँ पढ़ो। उनका जीवन कितना सुखमय होता है और अन्तमें उन्हें किस प्रकारके परम सुखकी प्राप्ति होती है। याद करो—ध्रुव, प्रह्लाद, भीष्म आदिके पवित्र जीवनोंको।

यह सदा स्मरण रखो कि जो लोग दुर्गुणी और दुराचारी हैं, वे नित्य दुःखके केन्द्रमें ही पड़े हैं। उनका जीवन निरन्तर एक दुःखसे दूसरे दुःखमें, एक भयसे दूसरे भयमें और एक मृत्युसे दूसरी मृत्युमें प्रवेश करता रहता है। सुख, शान्ति और अमरत्व कभी उन्हें प्राप्त होता ही नहीं।

सच्चे सुखी वही हैं जो सद्गुणी और सदाचारी हैं। जिन्होंने काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर आदि शत्रुओंको जीत लिया है, ऐसे पुरुष सदा ही सुख, शान्तिमें निवास करते हुए अन्तमें अमरत्व और परम शान्तिको प्राप्त होते हैं।

बुरे संगसे सदा बचो। भागवतमें कहा है—बुरे संगसे सत्य, पवित्रता, दया, मौन, बुद्धि, श्री, लज्जा, यश, क्षमा, शम, दम और ऐश्वर्य आदि सब नष्ट हो जाते हैं। बुरे संगसे मन विषयोंका ही निवास बन जाता है, उसमें भगवच्चिन्तनके लिये गुंजाइश ही नहीं रह जाती। बुरा संग मनुष्योंका, स्थानका, वातावरणका, पुस्तकोंका, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—इन इन्द्रिय-विषयोंका और पुराने संस्कारोंका हो सकता है। इसलिये जहाँतक बने, अच्छे मनुष्योंका संग करो, अच्छे स्थानमें रहो, अच्छे वातावरणका सेवन करो, अच्छी पुस्तकें पढ़ो, इन्द्रियोंके द्वारा तमाम अच्छे विषयोंको ही ग्रहण करो, पुराने गंदे संस्कारोंके उठते ही चित्तको दूसरे अच्छे विषयोंमें लगाकर उन्हें हटा दो।

बुराईको किसी प्रकार किसी अंशमें भी कहीं भी स्थान मत दो। कभी मनमें यह अभिमान मत करो कि मैं साधनामें बहुत आगे बढ़ा हूँ, जरा-सी बुराई मेरी क्या कर सकेगी। बुराई—पापपर कभी दया मत करो, बुराईका अङ्कुर दीखते ही उसे काट डालो—जड़से उखाड़ डालो। बुराई आती है पहले बीजरूपमें, फिर बड़ा वृक्ष बनकर चारों ओर फैल जाती है—सब तरफ छा जाती है बेलकी तरह। बुराईपर कभी विश्वास न करो।

दूसरोंकी बुराइयाँ मत देखो। बुराइयाँ देखनेसे बुराईका चिन्तन होता रहता है और जैसा चिन्तन होता है, चित्त भी वैसा ही बनता चला जाता है। बुराइयोंका चिन्तन करते-करते यदि तुम्हारा चित्त बुराइयोंके साथ तदाकार हो गया तो फिर तुम्हें सब जगह बुराई ही दीख पड़ेगी। बुराईसे पिण्ड छूटना मुश्किल हो जायगा।

बुराई देखनी हो—अपनी देखो। निरन्तर आत्म-निरीक्षण करते रहो। पल-पलका हिसाब रखो—तन-मनसे कितनी और कैसी बुराइयाँ हुईं। फिर उनसे बचनेकी प्रतिज्ञा करो।

भगवान्‌से प्रार्थना करो—वे बुराईसे बचावें। मनमें निश्चय करो कि श्रीभगवान्‌के बलसे अब मेरे अंदर कोई बुराई नहीं पैदा हो सकेगी। मुझसे कोई बुराई नहीं हो सकेगी। भगवान्‌के कृपा-बलपर तुम्हारा पक्का विश्वास होगा और मनमें बुराइयोंसे बचनेसे दृढ़ निश्चय होगा तो अवश्य तुम सब बुराइयोंसे मुक्त हो जाओगे। घबड़ाओ नहीं। बुराइयोंकी ताकत भगवान्‌की कृपाकी ताकतके सामने अत्यन्त ही तुच्छ है।

—'शिव'

# कुण्डलिनी-शक्तियोग

(पं० श्रीत्र्यम्बकभास्करजी शास्त्री खरे)

कुण्डलिनी-शक्तिके स्वरूपनिरूपणके विषयमें प्रायः वेदोंसे लेकर सभी योगशास्त्रों, उपनिषदों तथा तन्त्रग्रन्थोंमें अनेक वचन प्राप्त होते हैं—'**कुण्डले अस्याः स्तः इति कुण्डलिनी**।' तथा—

**मूलाधारस्थवह्न्यात्मतेजोमध्ये व्यवस्थिता॥**
**जीवशक्तिः कुण्डलाख्या प्राणाकाराथ तैजसी।**
**महाकुण्डलिनी प्रोक्ता परब्रह्मस्वरूपिणी॥**
**शब्दब्रह्ममयी देवी एकानेकाक्षराकृतिः।**
**शक्तिः कुण्डलिनीनाम विसतन्तुनिभा शुभा॥**

(योगकुण्डल्युपनिषद्)

**मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटिसमप्रभाम्।**
**सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिद्रवां प्रिये॥**
**विसतन्तुस्वरूपां तां बिन्दुत्रिवलयां प्रिये।**

(ज्ञानार्णवतन्त्र)

**मूलाधार आत्मशक्तिः कुण्डली परदेवता॥**
**शायिता भुजगाकारा सार्धत्रिवलयान्विता।**

(घेरण्डसंहिता)

—इन सभी वचनोंका संक्षेपमें आशय यह है कि साक्षात् भगवती महाशक्ति ही कुण्डलिनीके नामसे ज्ञेय हैं और प्रायः समस्त प्राणियोंके मूलाधारचक्रमें निवास करती हैं। मूढ़ प्राणियोंके हृदयमें यह संसुप्त रहती हैं, किंतु योगिजनोंके प्रयाससे उन्हें जाग्रत् कर समस्त ज्ञान प्रदान करती तथा मुक्त करती हैं। इनका आकार-प्रकार करोड़ों सूर्य या विद्युत्के समान प्रभापूर्ण है और चन्द्रमाके समान ये पीयूषवर्षा करनेवाली हैं तथा यह साढ़े तीन वेष्टन लगाकर कमलनाल या सर्पिणीके समान मूलाधारचक्रमें अवस्थित रहती हैं।

समष्टि सृष्टिकी कुण्डलिनीको महाकुण्डलिनी कहते हैं और उसीके व्यष्टि व्यक्तिमें व्यक्त होनेपर उसे कुण्डलिनी कहते हैं। सम्पूर्ण जगत्को जो चलाती है वह अव्यक्त कुण्डलिनी है और व्यष्टिरूप जीवको चलानेवाली व्यक्त कुण्डलिनी है। जो ब्रह्माण्डमें है वही पिण्डमें है, यह बात प्रसिद्ध ही है। '**कुण्डले अस्याः स्तः इति कुण्डलिनी**।' '**कुण्डले**' अर्थात् दो कुण्डल—इडा और पिंगला। बायीं ओरसे बहनेवाली जो नाडी है वह इडा है और दायीं ओरसे बहनेवाली पिंगला। इन दो नाडियोंके बीचमें जिसका प्रवाह है वह है सुषुम्ना नाडी। इस सुषुम्ना नाडीके अन्तर्गत और भी नाडियाँ हैं, जिनमें एक चित्रिणी नामकी नाडी है। इसी चित्रिणी नाडीमेंसे होकर कुण्डलिनी-शक्तिका रास्ता है। इसलिये इसे सुषुम्ना नाडीकी दोनों ओरसे बहनेवाली उपर्युक्त दो नाडियाँ ही दो कुण्डल हैं।

कुण्डलिनी-शक्तिके व्यक्त होनेके साथ वेग उत्पन्न होता है। उससे जो पहला स्फोट होता है उसको नाद कहते हैं। नादसे प्रकाश होता है और प्रकाशका व्यक्त रूप महाबिन्दु है। नादके तीन भेद हैं—महानाद, नादान्त और निरोधिनी। बिन्दुके भी तीन भेद हैं—इच्छा, ज्ञान और क्रिया; सूर्य, चन्द्र और अग्नि; ब्रह्मा, विष्णु और महेश। जीव-सृष्टिमें उत्पन्न होनेवाला जो नाद है वही ॐकार है, उसीको शब्दब्रह्म कहते हैं। ॐकारसे बावन मातृकाएँ उत्पन्न हुईं। इनमें पचास अक्षरमय हैं, इक्यावनवीं प्रकाशरूप है और बावनवीं प्रकाशका प्रवाह है। यह बावनवीं मात्रा वही है जिसे सतरहवीं जीवन-कला कहते हैं। उपर्युक्त पचास मातृकाएँ लोम और विलोमरूपसे सौ होती हैं। ये ही सौ कुण्डल हैं। इन कुण्डलोंको धारण किये हुई मातृकामयी कुण्डलिनी है। इस कुण्डलिनी-शक्तिसे चैतन्यमय जीव देहेन्द्रियादि-युक्त जीवरूप धारण करते हुए प्राणशक्तिको संग लिये स्थूल शरीर अर्थात् अन्नमय-कोषका स्वामी होता है।

इस जीवको जीवत्वकी चेतना सहस्रारचक्रसे अनाहतमें अर्थात् हृच्चक्रमें आनेपर होती है। सहस्रारचक्रमें अव्यक्त नाद है, वही आज्ञाचक्रमें आकर ॐकाररूपसे व्यक्त होता है। इस ॐकारसे उत्पन्न होनेवाली पचास मातृकाओंकी अव्यक्त स्थितिका स्थान सहस्रारचक्र है। इस स्थानको अकुलस्थान कहते हैं। यही श्रीशिव-शक्तिका स्थान है। श्रीशिव-शक्ति अर्धनारीनटेश्वर हैं—शक्ति व्यक्त और शिव अव्यक्त हैं।

यहाँ चित्र-संख्या १ में भ्रूमध्यमें 'हं', 'सं' (क्षं) 'सोऽहं' मन्त्रके दो बीज दिखाये हैं। इनके अन्तर्गत ॐकार-बीजसे पहले स्वरोत्पत्ति, पीछे व्यञ्जनोत्पत्ति हुई। भ्रूमध्यगत

आज्ञाचक्रके नीचे विशुद्धाख्य अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान और मूलाधारचक्रोंमें क्रमसे इस वर्णोत्पत्तिका क्रम दिखाया है। इससे यह सिद्ध है कि इन चक्रोंमेंसे ही मातृकात्मक स्वरमाला
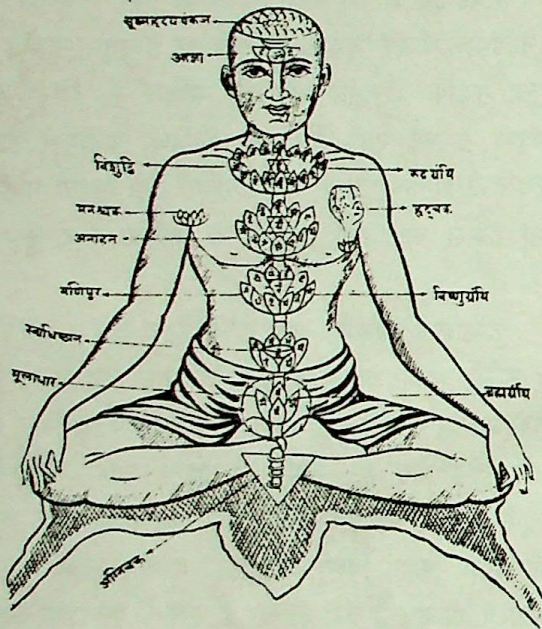
षट्चक्र [चित्र नं० १

और वर्णमाला उत्पन्न हुईं। इस चित्रमें यह दिखाया गया है कि विशुद्धाख्य चक्रके समीप रुद्रग्रन्थि, मणिपूरके समीप विष्णुग्रन्थि और मूलाधारके समीप ब्रह्मग्रन्थि है।

इन मातृकाओंके स्थान जीवके शरीरमें कहाँ-कहाँ, किस प्रकार हैं, यह इस प्रकार है—

अ, आ, कवर्ग, ह—कण्ठस्थान।

इ, ई, चवर्ग—तालुस्थान।

ऋ, ॠ, रवर्ग—मूर्धास्थान।

ऌ, ॡ, तवर्ग, ल, स—दन्तस्थान।

उ, ऊ, पवर्ग—ओष्ठस्थान।

इन उत्पत्ति-स्थानोंको बताते हुए मूलाधार, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि ये नाम नहीं दिये हैं। बात यह है कि परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी इन चार वाणियोंके स्थान मूलाधारसे बताये जाते हैं। शब्दोत्पत्तिके स्थान इस प्रकार बतानेपर भी अनुभव इससे भिन्न है।

वैखरी वाणी शब्दोच्चारणको कहते हैं। इस वैखरी वाणीका मूलस्थान परा वाणी है। शब्द पहले परा वाणीसे उठता है। पहले मनमें वृत्ति उठती है, तब वृत्तिसदृश विचार उत्पन्न होता है। विचार प्रकट करनेका मूलस्थान परा वाणी है। विचार सूक्ष्म शब्दमें जब आता है, तब उसे पश्यन्ती कहते हैं। पश्यन्ती वाणीके शब्द नेत्रोंको दिखायी देने लगते हैं। ये शब्द जब अर्धवाक् और रसनाकी क्रियातक आते हैं तब वे मध्यमा वाणी कही जाती हैं और स्पष्ट शब्दोच्चार होनेपर वह वैखरी वाणी हो जाती है।

सहस्रारके नीचे षोडशदल सोमचक्र है, उसके नीचे द्वादशदल मनश्चक्र है, उसीमें विचार उत्पन्न होनेका स्थान है। वह मूर्धास्थानके ऊपर है। ये चक्र सर्वमान्य योगमार्गके श्रीहाट, गोल्लाट और त्रिकूलचक्रोंके समीप ही हैं। मनश्चक्रकी नाडी मनोवहा या आज्ञावहा नलिका है। श्रवणेन्द्रियगोलक शब्दवहा नाडी, नेत्रेन्द्रियगोलक रूपवहा नाडी, वागिन्द्रिय-गोलक रसवहा नाडी, घ्राणेन्द्रियगोलक गन्धवहा नाडी और स्पर्शेन्द्रियगोलक स्पर्शवहा नाडी है। ये नाडियाँ सहस्रार-चक्रके आस-पास और मनोवहा नाडीके ऊपर हैं।

मनश्चक्रका स्थान भ्रूमध्यके ऊपर पहले बता आये हैं। पर कुछ ग्रन्थोंमें मनश्चक्रका स्थान अनाहतके समीप बताया है और यह मनश्चक्र आठ दलका है। इस प्रकार मनके दो भेद हैं—एक विचार करनेवाला मन और दूसरा विषयोंको अनुभव करनेवाला मन।

वामकेश्वरतन्त्रमें यह वर्णन है कि मस्तकमें जैसा सहस्रारचक्र है वैसा ही सहस्रारचक्र मूलाधारमें भी है और कुण्डलिनी जिस स्वयम्भू-लिङ्गको लपेटकर बैठी है वह स्वयम्भू-लिङ्ग इसी मूलाधारके सहस्रारमें है। ऊपरमें जिस रुद्रग्रन्थि और ब्रह्मग्रन्थिका उल्लेख हुआ है उनके विषयमें इस तन्त्रमें यह कहा है कि रुद्रग्रन्थि मूलाधारके समीप है और ब्रह्मग्रन्थि विशुद्धाख्यके समीप। इसी प्रकार इस वामकेश्वर तन्त्रके अनुसार जो चित्रपट तैयार किया है उसमें मूलाधारमें 'वँ शँ षँ सँ' इन बीजोंके बदले 'अ आ इ ई' बीज आते हैं। इसके बाद स्वाधिष्ठानमें 'उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ' बीज आते हैं और यही अनुक्रम आगे चलता है और आज्ञाचक्रमें 'ह', 'क्ष' बीज आते हैं। (चित्र नं० २ देखिये) इस चित्रपटके अनुसार परा वाक् मूलाधारमें, पश्यन्ती मणिपूरमें, मध्यमा अनाहतमें और वैखरी विशुद्धिमें, यह क्रम है और अनाहतचक्रके समीप

अष्टदल मनश्चक्र है।

चित्र-संख्या २ में एक और विशेषता यह है कि इसमें अधिष्ठान-देवता भी भिन्न हैं। दलोंके वर्ण इस चित्रपटमें नहीं बताये हैं। पञ्चमहाभूतोंका भी निर्देश इसमें नहीं है।
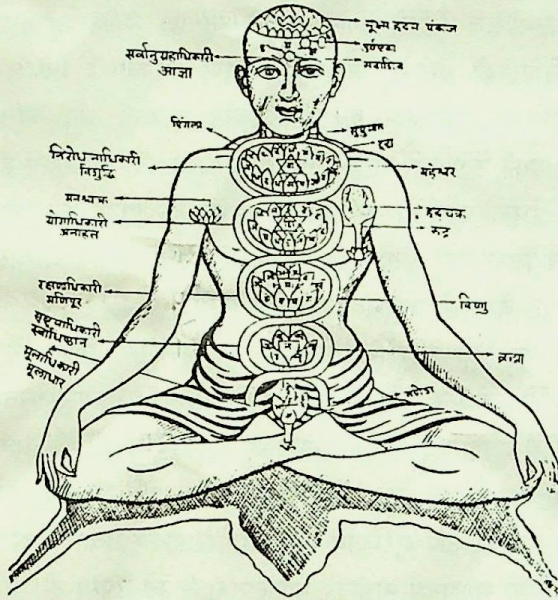
षट्चक्र			[ चित्र नं० २

**'जीवो ब्रह्मैव नापरः।'** जीव ब्रह्मरूप ही है और तदनुसार जो ब्रह्माण्डमें है वही पिण्डमें है। कुण्डलिनी-शक्ति जैसे ब्रह्माण्डमें है वैसे ही पिण्डमें है। 'पिण्डसे पिण्डका ग्रास' करना यह है कि कुण्डलिनीरूप पिण्ड देहरूप पिण्डका ग्रास करे। कुण्डलिनी जब जाग उठती है तब वह देहगत सब त्याज्य पदार्थ, कफ-पित्तादि दोष नष्ट कर डालती है और वह जब ऊर्ध्वगामिनी होती है तब देहके चलन-वलनादि व्यापार बंद हो जाते हैं। यही क्यों, हृदयका आकुञ्चन, प्रसरण और नाडीकी गति भी बंद हो जाती है, अन्तमें कुण्डलिनी-शक्ति सहस्रार-स्थित परम शिवसे जा मिलती है। इससे जीव अपना जीवत्व पीछे छोड़ शिवपदवीको प्राप्त होता है।

कुण्डलिनी-शक्ति और प्राण-शक्ति साथ लेकर जीव इहलोककी यात्रा करनेके लिये माताकी कोखमें आता है। यह जीवेश्वर अपनी सङ्गिनी कुण्डलिनी और प्राणशक्तिके साथ मातृगर्भमें प्रवेश करता है और प्रवेश करते हुए—कुण्डलिनी-शक्ति सहस्रारचक्रमें अपना मुख्य स्थान नियत करती है और पीछे षट्चक्रोंमें तथा अन्यान्य सब रन्ध्रों और कुहरोंमें प्राणशक्तिके साथ प्रवेश करती है तथा अन्तमें स्वयम्भू-लिङ्गको साढ़े तीन लपेटोंसे लपेटकर और लिपटकर बैठ जाती या सो रहती है अथवा साम्यावस्थामें रहती है।

सभी जीव जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन्हीं तीन अवस्थाओंका अनुभव करते हैं। तुरीय अवस्थाका ज्ञान और विज्ञान केवल योगियोंको होता है। इन तीन अवस्थाओंमें कुण्डलिनीकी स्थिति साम्यावस्थामें होती है और उसके द्वारा शरीर-धारणाका कार्य होता है। अव्यक्त **'सोऽहं'** शब्द ही कुण्डलिनीकी साम्यावस्था है। इस अव्यक्त **'सोऽहं'** शब्दकी अनुभूति आज्ञाचक्रमें होती है और वही **'सोऽहं'** शब्द प्राणवायुके सहारे अनाहतचक्रमें पहुँचकर अनाहतचक्रकी प्रथम मातृका 'क' का सहारा पाकर **'कोऽहं'** शब्दमें परिणत होता है। आज्ञाचक्रतकको अनुभव करनेवाला जीव आत्म-स्वरूपको नहीं भूलता, परंतु नीचे उतरनेपर नाना प्रकारके विषयोंमें लोलुप होकर वह **'सोऽहं'** के बदले **'कोऽहं'** कहने लगता है और आस-पासके लोगोंके साहचर्यसे विकृतज्ञान होकर **'देहोऽहं'** कहने लगता है और देहात्मवादी बनता है। **'अधःस्रोता वै जीवाः'**—इस वचनके अनुसार सहस्रार-चक्रसे नीचे आकर अनाहतमें, अनाहतसे मणिपूरमें फिर स्वाधिष्ठान और वहाँसे मूलाधारमें आकर प्राणशक्तिके सहारे पूर्ण जीवत्वको प्राप्त होता है। परंतु यही जीव **'उर्ध्वस्रोता वै देवाः'**—इस वचनके अनुसार स्वयम्भू-लिङ्गको लपेटी हुई कुण्डिलिनी-शक्तिको जाग्रत् करके ऊर्ध्वगामी होकर देवत्वको प्राप्त होता है, स्वयं देवस्वरूप होता है।

चिदाकाशमें **'एकोऽहं बहु स्याम्'** रूपका स्पन्द हुआ। स्पन्दसे नाद उत्पन्न हुआ। नाद उत्पन्न होनेके लिये गतिको उत्पन्न होना पड़ता है। कहते हैं कि विद्युत्प्रकाश उत्पन्न होनेके समय विद्युत्कण विलक्षण वेगसे घूमा करते हैं। उनकी गतिका यह वेग यदि नियमित हो तो वे अणुत्वको प्राप्त होते हैं। वक्र-गतिसे और सरल गतिसे घूमनेवाले विद्युत्कण ही शब्दरूप गति हैं। यह शब्द सामान्य मनुष्यके श्रवणेन्द्रियको गोचर नहीं होता। तथापि जिनकी दिव्य श्रवणशक्ति जाग्रत् हो चुकी है, वे उस शब्दको सुनते हैं।

ऐसी ध्वनियाँ दो प्रकारकी हैं। एक अनाहत ध्वनि और दूसरी आहत ध्वनि। यों ही उत्पन्न होनेवाली आहत ध्वनिसे

कोई अर्थोत्पत्ति नहीं होती। अनाहत ध्वनिका अर्थ है '**सोऽहं**'-ध्वनि। यह ध्वनि पहले अव्यक्त रूपसे आज्ञाचक्रमें मनोऽनुभूत हुई, अनन्तर अनाहतचक्रमें जाकर श्रवणेन्द्रियका द्योतक हुई। परंतु मात्रोत्पत्ति अनाहतचक्रपर अवलम्बित नहीं है।

आज्ञाचक्रके '**सोऽहं**'-ध्वनिमें जो ॐकार है उससे स्वर और व्यञ्जन उत्पन्न हुए। इन्हींको वर्ण अथवा अक्षर कहते हैं। अक्षरोंसे पद हुए और पदोंसे वाक्य तथा वाक्योंके समुदायसे भाषा। अर्थात् शब्द अक्षर यानी अविनाशी हैं। शब्दोच्चारके पूर्व वे थे, शब्दोच्चारके होते भी वे हैं और उच्चार हो चुकनेपर भी हैं। जैसे अँधेरेमें रखा हुआ घट प्रकाश होनेके पूर्व भी है, प्रकाश होनेपर भी है और प्रकाशके जानेपर भी है।

ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके पूर्व स्फोट हुआ अर्थात् महानाद उत्पन्न हुआ। परब्रह्मकी इच्छाशक्ति ही स्फोट है और महानाद उसकी क्रियाशक्ति। नाद उत्पन्न होनेके लिये गतिका होना आवश्यक है और गतिके होते ही प्रकाश उत्पन्न होता है। उष्णताके बिना गति नहीं उत्पन्न होती। उष्णता, नाद और गति तीनों परस्पर सापेक्ष हैं। जहाँ उष्णता होगी, वहीं गति होगी और जहाँ गति होगी, वहीं नाद होगा। उष्णताका दृश्यरूप प्रकाश है।

महानादके साथ अक्षरोत्पत्ति हुई। परम शिवके डमरूसे 'अ इ उ ण्' आदि अक्षर उत्पन्न हुए। अक्षर ही मातृकाएँ हैं। '**पञ्च पञ्च उषः**' कालमें नियतमनाः होकर मध्यमा वाणीसे नामस्मरण करके, जिस नाडीसे योगश्वास चल रहा हो उस ओर अर्धोन्मीलित दृष्टिसे ध्यान लगाने या छः महीने अभ्यास करनेवालेको अपनी श्वासगतिके साथ आनेवाली प्रकाश-किरणोंका साक्षात्कार होता है अर्थात् अव्यक्त और व्यक्त अक्षरोंकी उत्पत्तिके साथ-साथ ही प्रकाशोत्पत्ति भी रहती ही है। इसका अनुभव अवश्य ही अभ्यासके बिना, एकाग्रता साधे बिना नहीं होता। साधक जिस नाडीके सहारे अभ्यास करेगा, वैसा ही अनुभव उसे प्राप्त होगा।

यह कुण्डलिनी सहस्रारमें प्रकाशरूपसे स्थित है। जीवको जीवत्व देनेके लिये यह शरीरके सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर छिद्रोंमें प्रवेश करके, सूक्ष्म नाडी जो सुषुम्ना है उससे भी सूक्ष्म वज्रा, वज्रासे भी सूक्ष्म चित्रिणी और चित्रिणीसे भी सूक्ष्म जो ब्रह्मनाडी है, उस सूक्ष्मतम ब्रह्मनाडीमेंसे होकर प्रवाहित होती है। ऐसी सूक्ष्मतम नाडीको मृणालतन्तुकी जो उपमा दी गयी है वह ठीक ही है। कुण्डलिनी-शक्तिके द्वारा योगकी साधना कुण्डलिनी-शक्तियोग है।

(क्रमशः)

## रे पगले !

(श्रीओमप्रकाशरघुनाथजी चौरसिया)

**हरि-चरणन चित ला रे पगले !**
**जगके नाते-रिश्ते झूठे इनमें चित न लगा॥ रे पगले हरि०॥**
**जिसके पानेमें दुख होता, जिसके खोनेपर तू रोता।**
**ऐसी संसारी माया तज, अपना चित न जला॥ रे पगले हरि०॥**
**जगमें शान्ति नहीं मिलनेकी, मनकी प्यास नहीं बुझनेकी।**
**तोड़ दुराशाके सब बन्धन, हरि चरणोंमें जा॥ रे पगले हरि०॥**
**माया पग-पगपर ठगती है, तुझको सुखमय यह लगती है।**
**है यह मृग-मरीचिका पगले! वृथा न मन भटका॥ रे पगले हरि०॥**
**लहराता प्रभु-प्रेमका सागर, 'ओम' तू अपनी भर ले गागर।**
**प्रेमामृत पी तृप्त अमर हो भव सागर तरजा॥ रे पगले हरि०॥**

# व्यवहार-सुधार

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्राचीन प्रवचनका एक अंश)

अपणता (अपनापन) अर्थात् मेरापन और आसक्तिमें फर्क है। यह अपणता भी दो प्रकारकी है। मेरापन जो है वह निष्कामभावसे भी होता है और सकामभावसे भी। सकामभावसे जो मेरापन है वह बाँधनेवाला है और निष्कामभावसे जो मेरापन है वह बाँधनेवाला नहीं है। इसकी यह परीक्षा है कि जैसे मैं यह कहूँगा कि अमुक व्यक्ति मेरा है तो इनमें मेरा निष्कामभावसे मेरापना रहेगा, तो इनके हितके लिये मेरी पूरी चेष्टा रहेगी। इतनी चेष्टा कि जिनका भाई होनेके नाते इनके साथ मेरापनका भाव है उतनी उनके भाईकी नहीं होगी। अतः इनके आत्माका कैसे कल्याण हो, इसका जितना भाव इनके भाईका इनके कल्याणमें रहेगा, उससे मेरा अधिक रहेगा; क्योंकि मेरा निष्कामभाव है और इनका सकामभाव है। वह मेरा भाव दामी भी होगा और उसकी मात्रा भी अधिक जोरदार होगी। क्योंकि इनका सम्बन्ध तो स्वार्थ ले करके है, इसलिये जब इनका स्वार्थ उनसे सिद्ध नहीं होगा या इनके विपरीत जब भाई खड़ा हो जायगा तो भाईपनेका नाता कायम रहते हुए भी इनके अनिष्टकी चेष्टा भी ये कर सकते हैं। यह बात हमने प्रत्यक्ष देखी भी है। एक सज्जन थे। उनका अपने भाईसे प्रेम था, उस समय उनकी वकीलीमें पैसा मिले ऐसी चेष्टा वे करते रहते थे और जब वे उनके विपरीत हो गये तो एक दूसरेको मारनेतककी चेष्टा करने लगे। भाईका सम्बन्ध तो कायम रहा, भाईका सम्बन्ध तो परे होता नहीं, भाई तो भाई रहते ही हैं, किंतु जब स्वार्थकी सिद्धि न होकर वह उनके विपरीत हो जाता है, तो उसका हित करना तो दूर रहा उसके अनिष्टके लिये कमर कस लेता है। किंतु स्वार्थको लेकर अपणता नहीं होती है तो उसके लिये कितना ही विपरीत हो जाय, उसके हितका जो एक आग्रह है, माने हितका जो कर्तव्य है। (आग्रह-कर्तव्य कोई शब्द घटते नहीं) निष्कामभावमें, किंतु समझानेके लिये कहते हैं, तो वह अपनत्व उसका कायम रहता है। वह उससे अपना फायदा न उठाये तो दूसरी बात है। किंतु उसकी तरफसे वह कायम रहता है।

जहाँ स्वार्थ होता है, उसके मरनेपर उसे कोई शोक नहीं होता। जीनेमें स्वार्थ है तो जीनेमें हर्ष होता है, मरनेमें स्वार्थ है तो उसके मरनेमें हर्ष होता है। जीता हुआ बाधक है तो एक प्रकारसे जीनेमें दुःख होता है तो उसके हर्ष-शोक आ जाते हैं। जिसका निष्कामभाव है, उसे राग-द्वेष और हर्ष-शोक नहीं होते। इसी प्रकार किसी संस्थाके प्रति जब निष्कामभाव होगा तो वह जो अपनापन है कि 'अमुक संस्था हमारी है' वह अपनापन भूषण है। यदि उसमें स्वार्थ है और उसमें मेरापन है तो वह दोषी है। इसी प्रकार पदके विषयमें भी बात है कि मैं मालिक हूँ, प्रेसीडेंट हूँ, मैं मन्त्री हूँ। देखो, इसने मेरी बात नहीं मानी तो इसको दण्ड देना चाहिये, इसे निकाल देना चाहिये, क्योंकि इसने मेरी बात नहीं मानी। मेरी बात नहीं मान करके संस्थाके लिये लाभ है या नुकसान, इसका विचार नहीं किया तो संस्थाके लिये तो बहुत लाभ है तो अपनी बात चाहे मत मानो। तो यह जो पदका एक प्रकारसे अहंकार है यह तो डुबानेवाला है। संस्थाकी हानि तो बर्दाश्त नहीं करनी चाहिये। क्यों नहीं करनी चाहिये, इसके हितके लिये, इसका क्या हित है, यदि यह इसी प्रकारसे काम करेगा तो इसकी उन्नति नहीं होगी। आखिरमें इसको जवाब देना पड़ेगा। और आगे जा करके भी यदि इसकी यही दशा होगी, तो इसका परमहित इसको डाँटने-धमकानेमें है, तो आप उसे डाँट सकते हैं, धमका सकते हैं, इसके हितके लिये यदि आप उसपर क्रोध भी करें तो आप निर्दोषी हैं और लोग चाहे आपको क्रोधी कहें कोई हर्जकी बात नहीं। आपकी नीयत क्या है? आपकी नीयत है उसे अच्छा बनाना, उसका हित करना, उसे मनुष्य बनाना। यह आपकी नीयत है तो आप उसको चाहे दो थप्पड़ भी लगा दें, कोई हर्जकी बात नहीं। माता-पिता लगाते हैं कि नहीं, गुरु लगाता है कि नहीं। किंतु उसमें हित रहता है। तो पदका जो अभिमान है वह गिरानेवाला है। अतः अभिमान अच्छा नहीं है।

पदाधिकारी बनना कोई पाप नहीं, मन्त्री बनो, प्रेसीडेंट बनो, मैनेजर बनो, उसमें कोई दोषकी बात नहीं, किंतु उसका अभिमान नहीं आना चाहिये। अभिमान किसी बातका नहीं आना चाहिये। अभिमानसे मनुष्यका पतन हो जाता है और उसमें राग-द्वेष, हर्ष-शोक उत्पन्न हो जाते हैं। जितने

पदाधिकारी डूबते हैं, वे अभिमानके कारण डूबते हैं, पदके कारण नहीं। पद चाहे कोई आपको मिले। भगवान्‌को कितना बड़ा पद मिला हुआ है, किंतु भगवान् डूबते थोड़े ही हैं। महात्मा पुरुषका कितना ऊँचा पद है, वह पद उनको डुबानेवाला नहीं है। पदका अभिमान डुबानेवाला है। महात्मा अभिमान करे कि मैं महात्मा हूँ तो वह डूब जाता है। यद्यपि महात्मा तो ऐसा करता ही नहीं और जो करता है वह महात्मा ही नहीं। तो पदका अभिमान जो है वह हर प्रकारसे डुबानेवाला है, जैसे कि एक सज्जन हैं, वे संस्थासे बहुत ही कम लेते हैं जो नहीं लेनेके समान ही है, उन्हें कोई अपने पदका अभिमान भी नहीं है और परिश्रम भी करते हैं तथा संस्थाका हित भी चाहते हैं, उनकी नीयत भी बहुत अच्छी है, तो फिर परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब क्यों होता है? इसका जवाब है कि वे सोचकर खुद देखें। वे खुद इस बातको सोचें कि उनमें मान-बड़ाईका दोष है कि नहीं; क्योंकि शरीरके आरामका और रुपयेके स्वार्थका दोष तो देखनेमें नहीं आता है, हमलोगोंके देखनेमें बिलकुल ही नहीं आता है, फिर भी उनमें छिपा हुआ हो तो उसका हमको ज्ञान नहीं है और मान-बड़ाईका दोष जो है उसके विषयमें कह नहीं सकते। यह तो समझमें आता है कि वे मान-बड़ाईके लिये नहीं करते, पर मान-बड़ाईके लिये करें तो बड़ा दोष है। मनुष्य मान-बड़ाईके लिये नहीं करके जो स्वतः प्राप्त हो जाय उसमें निर्विकार रहे, यह बड़ी बात है। इस दोषके लिये हम नहीं कह सकते कि यह दोष उनमें घटता है या नहीं। विचार करनेपर हमको यह दोष भी नहीं दीखता कि उनकी जो शक्ति है उसको कम काममें लाते हों। हाँ, ऐसी अवस्थामें कम लाते ही हैं, जैसे कहीं शासन करनेका काम पड़े तो उसमें उनको कठिनता पड़ती है। शक्ति रहते हुए भी उसको काममें नहीं लाते, तो उसे हम दोष नहीं मानते। समयकी चोरी करते हों ऐसी भी बात नहीं है। किन्हींमें मान-बड़ाईकी बातका सूक्ष्म दोष आ सकता है, हमारी धारणामें जैसे पदका दोष है, यह कहीं आ सकता है, मालिकीका दोष कहीं आ सकता है। तो इस मालिकीपनेको तो छोड़े नहीं और अभिमानका दोष जितना है उसको निकाले। उस पदका तो त्याग नहीं करे, किंतु पदका जो अभिमान है, उसका त्याग करे और उसकी परीक्षा तो वह खुद ही कर सकता है कि यह दोष हमारेमें आता है कि नहीं।

मान-बड़ाई प्राप्त होनेपर खुश हो जाय यह दोष आ सकता है, इस दोषके दूर होनेका उपाय यह है कि जैसे कोई अपनेको गाली भी दे और वह बुरी मालूम पड़े, जैसे अपना कोई अपमान करे वह बुरा मालूम दे, उससे भी ज्यादा बुरी बात है जो मान-बड़ाई और प्रतिष्ठामें प्रसन्न हो। इसी प्रकार दो-एक सज्जन और हैं, तो उनका जो रुपये लेकर काम करना है वह तो बिलकुल दोष नहीं है और रुपये ले करके जो सेवाका भाव है, उसमें कमी मालूम देती है। शक्तिका जो प्रयोग है उसमें कमी मालूम देती है। यदि आप मनमें निश्चय करें तो आप शक्तिका ज्यादा प्रयोग कर सकते हैं, समयका ज्यादा प्रयोग कर सकते हैं। जितनी शक्तिका प्रयोग करे, समयका प्रयोग करे। किंतु एक प्रकारसे तो हम लोभकी तरफ चले जायँ, उनकी जो शक्ति, उनकी जो सामर्थ्य, उनकी जो योग्यता, उनका जो समय है, वह यहाँपर अधिक लगे, यह हमारे लोगोंकी नीयत है। उनके ही नहीं हर एक आदमीसे, तो उनसे भी हम वञ्चित क्यों रहें। ये तो हम चाहें कि उनकी जो शक्ति है, समय है वे उसे और अधिक लगावें। जितने विषयमें हमने समय और शक्तिके विषयमें दोष कायम नहीं किया, उनको अपने उदाहरणमें रखें।

एक सज्जनके मनके प्रतिकूल होनेसे जो क्रोध आ जावे, उत्तेजना आ जावे, यह बड़ा भारी दोष है और मनकी अनुकूलतामें जो प्रसन्नता होती है यह भी दोष है, तो हर्ष और शोक, राग और द्वेष—ये दोष हमारेको प्रतीत होते हैं। इसी प्रकारसे जैसे एक सज्जनके लिये कोई पद नहीं है तो बिना पदके ही वे अपना पद मानकर अभिमान लावें तो वह और ज्यादा दोष है। कोई अधिकार नहीं है, न कोई मैनेजर हैं, न कोषाध्यक्ष, न मन्त्री, न सभापति, पर उन्हें यह समझना चाहिये कि मैं किसीको भी खुश क्यों नहीं रख सकता, मेरी एक प्रकारसे कहीं पूछ क्यों नहीं है। नाम नहीं लेना चाहिये, पर प्रकरण आता है तो बतला देता हूँ। जैसे एक महाशयजी थे, अब वे चले गये, उनका स्वभाव उनके साथ ही रहा। उनसे न उनके भाईलोग खुश रहते थे, न कोई सत्संगवाला खुश रहता था, न हमलोग खुश रहते थे, फिर भी उनको निभाया। तो वह दोष उनका वे ही दूर करते

तो होता, नहीं किया, विचारे मर गये, उनकी चर्चा करना बेकार है। तो हर एक आदमीको लेकर उसको विचार करना चाहिये कि आप स्वर्गाश्रममें रहे तो स्वर्गाश्रममें तो अधिकारी हैं, इनके ऊपर भी कोई मालिक हैं। उनको भी खुश नहीं रख सके, यहाँतक कि जिनके नीचे हो करके रहे, उनको यह सोचना चाहिये कि सभी बुरे नहीं होते, अपनेमें कोई ऐसा दोष है जो कि हम सबको खुश नहीं रख सके, यह दोष क्या है? दोष है अभिमानका। मनुष्यमें योग्यता न हो और योग्यताका अभिमान कर लेवे, वह सबसे ज्यादा खराब है और एक जिद्द उचित जो जिद्द है वह भी खराब है। मनमाना करना और स्वतन्त्रता—यह अनुचित जिद्द तो खराब है ही। स्वतन्त्रता हम देते तो नहीं, पर बलात् स्वतन्त्रता ले करके उसका उपयोग करना तो उसका दोष बड़ा भारी दोष है।

परतन्त्र हो करके रहनेसे मनुष्यका जितना सुधार हो सकता है, उतना स्वतन्त्र रहनेसे नहीं हो सकता। अपनी आत्माके कल्याणके लिये परतन्त्रता एक नम्बर श्रेष्ठ उपाय है। स्त्री अपने पतिके परतन्त्र रहकर पातिव्रत-धर्मका पालन करे तो शीघ्र ही उद्धार हो जावे। पूर्णतासे परतन्त्र रहना चाहिये। पुत्र यदि माता-पिताके परतन्त्र होकर रहे तो उसका जल्दी उद्धार हो जावे। शिष्य यदि गुरुके परतन्त्र होकर रहे तो बहुत जल्दी उसका कार्य सिद्ध हो जावे। भगवान्का जो भक्त है, ज्ञानी है, महात्मा है, उनमें जिनकी श्रद्धा हो या उनका अनुयायी होकर रहे तो मेरी समझमें एक क्षणमें कल्याण हो जाय। भगवान्के शरण हो करके भक्त होवे या तो उच्च पुरुषोंके शरण होवे तो एक क्षणमें कल्याण हो जाय, जितनी कमी है, वह पात्रतामें है। उसके लिये तो कुछ समय लगेगा। ऐसे ही मालिक जो हैं, उनके सेवक जो हैं, गुमाश्ता होकर रहें, वे सर्वथा मालिकके अनुकूल हो जावें तो बहुत जल्दी उनका उद्धार हो जावे। इसी उद्देश्यसे उनके अनुकूल होवे, रुपयोंके लिये नहीं। उन्नति रुपयोंकी होगी तो वह परमात्माकी प्राप्तिके उद्देश्यसे दूसरी तरफ चला जायगा। इसलिये यह बात नीचे होकर रहनेवालोंके लिये फायदे-मन्द है, ऊपर होकर रहे तो वह उसके लिये सिरपर भार है। उसपर बोझा है, थोड़ी कठिनता तो है, पर इस कठिनताके कारण पद त्यागना नहीं है, उन्हें सिद्ध करना है, जहाँपर एक प्रकारसे त्याग सके वहाँपर त्याग देवे, पर सब जगह नहीं। परंतु यों समझना चाहिये कि यह जोखिमका काम है और वहाँ जोखिम नहीं है, वहाँ तो बननेका ही काम है याने अनुकूल बन जावे। अनुयायी बन जावे और उसका दूसरा कोई कर्तव्य नहीं है। यहाँ कोई सोचनेकी भी जरूरत नहीं। और उसपर 'अपना भी भार है, अनुयायी अपने जो आधीन हैं, उसका भी उनपर भार है। जो मालिक हो करके रहे तो मालिकीमें जोखिमका काम है कि वहाँ स्वाभाविक ही अभिमान आ जाता है, जैसे मान-बड़ाई कोई करता है, तो वह स्वाभाविक ही प्यारी लगती है। विचार करते-करते भी एक प्रकारसे वह प्यारी लग ही जाती है अमृतके समान। लगनी चाहिये विषके समान और लगती है अमृतके समान। इसी प्रकारसे तो उसमें मालिकीका अभिमान स्वाभाविक आ ही जाता है और अभिमान आ जानेसे पतन हो जाता है। अभिमान पतन करनेवाला है, चाहे वह किसी भी प्रकारका हो—नामका अभिमान हो या रूपका अभिमान हो, जातिका अभिमान हो, गुणका अभिमान हो, प्रभावका अभिमान हो, उम्रका अभिमान हो, पदका अभिमान हो, देशका अभिमान हो, एक प्रकारसे कोई भी अभिमान है वह रसातलमें ले जाता है। तो मनुष्यको अभिमानसे तो भागना चाहिये, दूर रहना चाहिये। पदसे दूर रहनेकी जरूरत नहीं है, किंतु अभिमानसे दूर रहना चाहिये, पद उसका अनिष्ट नहीं करता है, बल्कि अभिमान ही अनिष्ट करता है। महात्मापनेका पद तो मुक्तिको देनेवाला है और उसका अभिमान नरकको देनेवाला है। पर भक्तपनेका अभिमान है कि मैं भगवान्का भक्त हूँ, यह अभिमान यदि सच्चा भक्त है तो इतना अनिष्ट नहीं करता। किंतु झूठा अभिमान है तो वह एक प्रकारसे पतन कर देता है। भगवान्का भक्त तो है नहीं, पर अपनेको भक्त मान बैठता है तो अपने भक्तका पद चाहता है कि मैं भक्त हूँ, ऐसा पद चाहता है, मामला गड़बड़ है। एक प्रकारसे भक्तका सच्चा अभिमान है, उतना उसको नुकसान नहीं। भगवान् उसकी रक्षा करते हैं। किंतु और सब जितने अभिमानमात्र हैं वे सब पतन करनेवाले हैं। इतना एक प्रकारसे हम बाद दे देते हैं, छोड़ देते हैं। तो जितने अभिमानमात्र हैं, वे पतनकी ओर ले जाते हैं। कोई पद पतन करनेवाला नहीं है, पद चाहे ईश्वरका भी मिल जावे एक

प्रकारसे पतन करनेवाला नहीं है। यह जो अभिमान है कि मैं ईश्वर हूँ, यह पतन करानेवाला है। **'ईश्वरोऽहमहं भोगी'** मैं ईश्वर हूँ, भोगी हूँ, ये पतन करनेवाले हैं। वास्तवमें ईश्वरका जो पद है, वह कोई बुरा नहीं है वह तो ईश्वरका पद ईश्वरके लिये है ही, वह तो संसारका कल्याण करनेवाला है। भगवान् सबका कल्याण करते ही हैं। महात्मालोग सबका कल्याण करते ही हैं।

# भजनका फल शान्ति

१-जबतक हृदयमें श्रीभगवान् नहीं आते, तभीतक उसमें काम-क्रोधादि बसे हुए हैं। जहाँ मनमें भगवान्का निवास हुआ कि फिर वे काम-क्रोधादि दोष कहाँ ठहर सकते हैं। फिर तो वे उसी दम भाग जाते हैं।

२-आजकल भारतवर्षकी जो अधोगति है, उसका एक प्रधान कारण संध्योपासन आदि नित्य-कर्मोंका न करना भी है। यदि हम नियमसे विधिपूर्वक नित्य-कर्म करते रहें तो रोग हमारे पास नहीं आ सकते, फिर हमें वैद्य-डॉक्टरोंकी आवश्यकता ही न पड़े। एक बार जब मैं बंगालमें था तो मुझे एक गाँवमें एक भट्टाचार्य महाशय मिले। उनकी आयु प्रायः साठ वर्षकी थी, परंतु वे थे बड़े तेजस्वी। मैंने उनके ऐसे स्वास्थ्यका कारण पूछा तो उन्होंने यही कहा कि 'मैं नियमानुसार संध्योपासन और गायत्रीका जप करता हूँ तथा शुद्ध अन्न खाता हूँ। इसीसे आजतक मैं नहीं जानता कि रोग क्या है।' नित्य-कर्म करनेवालेमें एक अद्भुत तेज होता है, जो प्रत्यक्ष उनके चेहरेपर चमका करता है। परंतु आजकल तो ऐसी दशा है कि बहुत-से लोग तो संध्या करते ही नहीं, जो करते हैं उनमें भी अधिकांश केवल उसका नाम ही करते हैं, संध्याके समय भी दुनियाभरकी गप्प हाँकते जाते हैं। थोड़ी देर भी शान्त और समाहित होकर उस कर्ममें नहीं लग सकते। दुर्दशा तो यहाँतक बढ़ी हुई है कि बहुत-से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तो यज्ञोपवीत ही नहीं कराते। उनका तो एक प्रकारसे द्विजातिमें जन्म लेना ही व्यर्थ हो जाता है।

३-यदि कोई क्रोधसे तप रहा है तो उसका भजन किस कामका। उसका तो सब कुछ किया-कराया भस्म हो जाता है। काम-क्रोध और लोभ तो सारे भजनको नष्ट कर देते हैं।

४-भजनका फल तो शान्ति है और शान्ति यही है कि तुमसे कोई दस बात कह जाय फिर भी तुम हँसते रहो। सारे दिन बातें तो करो अद्वैतवादकी और जहाँ-तहाँ झगड़ते डोलो तो इससे क्या होना है? अरे! तुम्हें जो गाली देता है वह तो तुम्हारा ही संकल्पमात्र है, उसे तुम अपना शत्रु क्यों मानते हो?

५-कुसंगी और सत्संगी एक-से नहीं होते। जो काम-क्रोधके अधीन है—दूसरोंसे झगड़ा करता है, वह कुसंगी है और जो सबकी सह लेता है वही सत्संगी है। सहनशक्ति ही साधकके लिये सबसे पहला साधन है।

६-लोग निष्कामताको बहुत महत्त्व देते हैं। परंतु भक्तिपक्षमें तो अच्युतभावहीन निष्कामता भी व्यर्थ ही है। भक्तका तो प्रत्येक कार्य भगवान्की पूजाके लिये ही होना चाहिये।

७-हमारा भावी जीवन बहुत कुछ हमारी भावनाओंके अधीन है। हमारी जैसी भावना होगी, वैसे ही हम बन जायँगे। यदि हम नीच भावनाएँ रखेंगे तो नीच-से-नीच बन जायँगे और उच्च भावनाएँ रखेंगे तो ऊँचे-से-ऊँचे चढ़ जायँगे। इसलिये यथासम्भव उच्च और शुभ भावनाओंका ही पोषण करो।

८-अच्छे-अच्छे साधकोंसे भी मिथ्या भाषण—व्यर्थ भाषण आदि कई प्रकारके वाणीके दोष बन जाते हैं। इनसे बचनेमें मौनसे बहुत सहायता मिलती है। किंतु जो लोग केवल दिखानेके लिये मौन रहते हैं, उनका मौन तो ढोंग ही है। साधन तो अपने लिये ही होना चाहिये, तभी उससे लाभ होता है।

९-किन्हीं-किन्हींका आग्रह है कि भगवान् तो निराकार ही हैं, वे साकार नहीं हो सकते। यदि ऐसी बात है तो उन्हें भगवान् कैसे कहा जायगा—वे सर्वशक्तिमान् कैसे माने जायँगे? तब तो वे जीव ही रहे। जो सर्वशक्तिमान् है, उसमें क्या साकार होनेकी शक्ति नहीं है? इसलिये भगवान् निराकार भी हैं और साकार भी। (प्रेषक—एक भक्त नागरिक)

# दुःखनाशके अमोघ उपाय

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

सभी प्राणी सुख चाहते हैं और वह भी अखण्ड, पूर्ण और नित्य; परंतु मोहवश उसकी खोज करते हैं संसारके पदार्थोंमें, जो स्वयं अपूर्ण, खण्ड और अनित्य हैं। भगवान्ने उनको सुखरहित और अनित्य अथवा दुःखालय और अशाश्वत बतलाया है, सो सत्य ही है। जो वस्तु अपूर्ण, खण्ड और अनित्य होती है, वह कभी सुख नहीं दे सकती। फिर जगत्में जो हम सुख देखते हैं, वह क्या है ? वह है भ्रान्ति। वास्तवमें तो विषयोंमें सुख है, ऐसी कल्पना ही भ्रम है। भगवान्ने भोगोंको दुःखयोनि बतलाया है। भगवान् कहते हैं—

**ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।**
**आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥**

(गीता ५। २२)

'अर्जुन ! ये जो इन्द्रियोंके स्पर्शसे उत्पन्न भोग हैं, सब दुःखकी उत्पत्तिके स्थान हैं और आदि-अन्तवाले हैं। बुद्धिमान् पुरुष उन भोगोंमें कभी प्रीति नहीं करता।'

वस्तुतः जगत्के सुख-दुःख सब केवल अनुकूलता और प्रतिकूलताको लेकर ही हैं। जहाँ अनुकूलताका बोध है, वहाँ सुख है और जहाँ प्रतिकूलताका बोध है, वहीं दुःख है। किसी स्थिति, घटना या वस्तुमें सुख-दुःख नहीं है। एक आदमीकी मृत्यु होती है। उसमें जिनका ममत्व है, वे प्रतिकूलताका अनुभव करके रोते हैं और जिनकी शत्रुता है, वे अनुकूलताके बोधसे हँसते हैं और आनन्द मनाते हैं। नारदजीके पूर्वजन्ममें जब वे दासीपुत्र थे और बहुत छोटी उम्रके—केवल पाँच वर्षके—थे, तब उनकी आश्रयभूता एकमात्र माताको साँपने डस लिया। माता मर गयी, इसपर नारदजीको दुःख नहीं हुआ। उन्होंने सोचा कि माता मेरे भजनमें एक प्रतिबन्धक थी। भगवान्ने बड़ा अनुग्रह किया जो माताका देहान्त हो गया। वे माताके इकलौते पुत्र थे। परंतु अनुकूलताकी भावनासे वे दुःखी नहीं हुए। नरसी भक्तके इकलौते और अत्यन्त प्यारे जवान पुत्रकी मृत्यु हो गयी। नरसीजीने उसमें अनुकूलताका अनुभव किया और दुःखी न होकर वे गाने लगे—*'भलुँ थयुं भाँगी जँजाल। सुखे भजीशुँ श्रीगोपाल।'* 'अच्छा हुआ जंजाल टूट गया, अब सुखसे श्रीगोपालजीका भजन करूँगा।'

कुछ वर्ष पूर्वकी बात है, कलकत्तेके 'अलीपुर बम-केस' में जिसमें श्रीअरविन्द तथा उनके भाई श्रीवारीन्द्रकुमार घोष आदि अभियुक्त थे, नरेन्द्र गोस्वामी नामक एक युवक सरकारी गवाह बन गया था। उसको जेलमें ही एक दूसरे अभियुक्त श्रीकन्हाईलाल दत्तने मार डाला। कन्हाईलालको फाँसीकी सजा हुई। पर उसको अपने इस कार्यपर इतना अधिक संतोष और आनन्द था कि फाँसीकी सजा सुनायी जाने और फाँसी होनेके बीचके दो-तीन सप्ताहके समयमें ही उसका लगभग अठारह पौंड वजन बढ़ गया। कहाँ तो मौतके नामसे खून सूख जाता है, कहाँ मृत्युकी तिथि निश्चित हो जानेपर भी खून बढ़ गया। गोस्वामीको मारना पाप था या पुण्य, यह पृथक् प्रश्न है। पर कन्हाईलालने अपनी इस मृत्युमें इतनी अधिक विलक्षण अनुकूलताका बोध किया और इतना अधिक सुखका अनुभव किया कि जिसने उसका इतना खून बढ़ा दिया। अतएव किसी घटनामें सुख-दुःख नहीं है, सुख-दुःख तो अनुकूलता और प्रतिकूलताके भावमें ही है।

ध्यानका अभ्यास करनेवाला एक साधक कोठरी बंद करके बैठता है और कहता है कि 'बाहरसे ताला लगा दिया जाय। तीन घंटे कोई खोले नहीं।' वह अंदर बैठकर मनको रोकने और इष्टका ध्यान करनेकी कोशिश करता है। यद्यपि नया साधक होनेसे उसका मन टिकता नहीं, फिर भी वह इसमें सुखका अनुभव करता है। और उसी कोठरीकी बगलकी दूसरी कोठरीमें एक आदमीको उसकी इच्छाके विरुद्ध बंद कर दिया जाता है। वह बड़ा दुःखी होता है और कहता है कि 'तुरंत मुझे बाहर निकाल दिया जाय।' बंद करनेवालोंको वह दुर्वचन कहता है, शाप देता है। दोनोंकी बाहरी स्थिति बिलकुल एक-सी है। दोनों ही एक-सी जगह बंद हैं। दोनोंके ही मन चञ्चल हैं। पर एक अनुकूलताका बोध करता है और दूसरा प्रतिकूलताका। इसीके अनुसार वे दोनों सुख-दुःखका भी पृथक्-पृथक् अनुभव करते हैं।

एक आदमी अपने विपुल धनैश्वर्यका स्वेच्छापूर्वक त्याग

करके संन्यास ग्रहण करता है और एक दूसरेका धन छीनकर उसे वैरी लोग घरसे निकाल देते हैं। इस स्थितिमें दोनों समान धनहीन हैं। पर पहला प्रसन्न है और दूसरा दुःखी। इसका कारण वही अनुकूलता-प्रतिकूलताका बोध है। इससे सिद्ध है कि यहाँके सुख-दुःख अनुकूल-प्रतिकूलभावमें ही हैं। एक भूखा आदमी है, बढ़िया-बढ़िया भोजन-पदार्थ बने हैं, वह खानेको लालायित है। खाने बैठता है, बड़ा स्वाद, बड़ा सुख मिलता है उसे। भर पेट खा लिया, खूब अघा गया। अब वही पदार्थ यदि कोई उसे जबर्दस्ती खिलाना चाहता है तो उसे गुस्सा आ जाता है। वह उद्विग्न हो जाता है। क्यों! इसलिये कि पहले अनुकूलभाव था, तब सुख मिला। प्रतिकूल होते ही दुःख हो गया। अतः सुख-दुःख वस्तुमें नहीं है।

यह भी निश्चित है कि यहाँकी प्रत्येक अनुकूलता अनेकों प्रकारकी प्रतिकूलताओंको साथ लेकर आती है। एक अभावकी पूर्ति दसों नये अभावोंकी उत्पत्ति करनेवाली होती है। यहाँकी वस्तुमात्र ही—स्थितिमात्र ही अपूर्ण, अनित्य, क्षणभङ्गुर, वियोगशील और किसी अन्य वस्तु या स्थितिसे निम्न स्तरकी है। जहाँ यह परिस्थिति है वहाँ प्रतिकूलता रहेगी ही और प्रतिकूलता रहेगी तो दुःख भी रहेगा ही। अतः कोई यह चाहे कि मैं जगत्में सारी परिस्थितियोंको सदा अपने अनुकूल बना लूँगा और परम सुखी हो जाऊँगा तो यह सर्वथा असम्भव है। ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। विचारके द्वारा प्रत्येक प्रतिकूलताको उपर्युक्त नारदजी और नरसीजीकी भाँति अनुकूलतामें परिणत कर लेना पड़ेगा, तभी सुख होगा। और ऐसा करना मनुष्यके अपने हाथकी बात है। स्वरूपतः बाह्य परिस्थितिको बदल देना तो बहुत ही कठिन है, निश्चित प्रारब्ध होनेपर तो असम्भव-सा ही है, परंतु विचारके द्वारा दुःखको सुखरूपमें परिणत करके सुखी हो जाना सहज है और अपने अधिकारमें है। इसके कई तरीके हैं, जो सभी सत्यके स्वरूप हैं, जैसे—

१-वेदान्तकी दृष्टिसे जगत् स्वप्नवत् है। मायासे ही यह सत्य भास रहा है। गीतामें भगवान्ने कहा है—

**न रूपमस्येह तथोपलभ्यते**
**नान्तो न चादिर्न च सम्प्रतिष्ठा।**

(१५।३)

'इसका स्वरूप जैसा दीखता है वैसा मिलता नहीं और इसका न आदि है न अन्त है और न इसकी अच्छी तरहसे स्थिति ही है।' सिनेमा देख रहे हैं। नाना प्रकारके दृश्य दिखलायी दे रहे हैं। आवाज सुनायी पड़ रही है, परंतु कोई चाहे कि इन देखी हुई वस्तुओंको पर्देके पास जाकर मैं ले लूँ तो उसे सर्वथा निराश होना पड़ता है। वहाँ सिवा सादे पर्देके और कुछ है ही नहीं। अथवा जैसे स्वप्नकी सृष्टिके पदार्थ और वहाँकी घटनाएँ जागनेपर नहीं मिलतीं, पर जबतक स्वप्न है, तबतक यह पता नहीं लगता कि यह स्वप्नकी सृष्टि कबसे बनी है और यह कबतक रहेगी। वहाँ तो वह नित्य ही मालूम होती है। पर सचमुच उसकी वहाँ कुछ भी प्रतिष्ठा—स्थिति नहीं है। स्वप्न टूटा कि कुछ नहीं। अतएव जगत्के समस्त सुख-दुःख स्वप्नकी सृष्टिके सुख-दुःखोंकी भाँति असत् हैं, जागनेपर जैसे स्वप्नके देखे हुए पदार्थोंकी सत्ता नहीं रहती, वैसे ही इनकी भी सत्ता नहीं है, इसलिये इन घटनाओंको लेकर सुखी-दुःखी होना मूर्खता है। एक ही अखण्ड परिपूर्ण परमात्मसत्ता है, वह नित्य सत्य सच्चिदानन्दघन है। उसमें न जन्म है न मृत्यु, न सुख है न दुःख, न लाभ है न हानि। वह सदा सम, एकरस और कूटस्थ है। इस प्रकारके विचारसे दुःखका नाश हो जाता है। संसारकी स्थिति कुछ भी हो, इस प्रकारके निश्चयवाले पुरुषको सुख-दुःख कभी नहीं होता। श्रीगीतामें कहा है—

**यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।**
**यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥**

(६।२२)

'जिस लाभको प्राप्त करके उससे अधिक कोई दूसरा लाभ नहीं मानता और जिसमें स्थित होकर वह बड़े भारी दुःखसे भी विचलित नहीं होता।' वह निरतिशय आत्यन्तिक आनन्दका अनुभव करता है। आनन्दरूप ही हो जाता है। फिर उसके लिये दुःख रहता ही नहीं। जबतक ऐसी स्थिति न हो, तबतक विचारपूर्वक ऐसी धारणा करे। इस धारणासे ही दुःखका नाश हो जाता है।

२-जगत्में जीवोंके लिये फलरूपसे जो कुछ भी प्राप्त होता है, सब सर्वशक्तिमान् परमसुहृद् भगवान्के नियन्त्रणमें और उनके विधानसे होता है। मङ्गलमय प्रभुका प्रत्येक

विधान मङ्गलमय है। देखनेमें चाहे कितना ही भयङ्कर हो, पर वास्तवमें वह कल्याणमय ही है। निपुण डॉक्टर जहरीले फोड़ेका ऑपरेशन करते हैं। छुरियोंसे अङ्गको काटते हैं। दर्द भी होता है। पर डॉक्टर यह क्रूर कार्य करते हैं रोगीके मङ्गलके लिये। तथा रोगी यदि विश्वासी और समझदार है तो वह इस निष्ठुर पीड़ादायक कर्ममें भी डॉक्टरकी दया मानकर प्रसन्न होता है और उसका कृतज्ञ होता है। इसी प्रकार हमारे परमसुहृद् मङ्गलमय भगवान् भी कभी-कभी हमारे मङ्गलके लिये ऑपरेशन किया करते हैं। इस बातपर हमें विश्वास हो जाय तो फिर दुःख रहेगा ही नहीं। छोटे बच्चेको माँ रगड़-रगड़कर नहलाती है, बच्चा रोता है, पर माँ उसके शरीरका मैल उतारकर, उसे स्वच्छ, पवित्र और निर्मल बनाकर नये कपड़े पहनाने तथा सजानेके लिये ही यह आयोजन करती है। इसी प्रकार भगवान् भी हमें निर्मल और पवित्र बनानेके लिये पापोंका फल—कष्ट भुगताया करते हैं। इसमें भी उनका वात्सल्य और कारुण्य भरा रहता है। इस दृष्टिसे यदि हम विश्वासपूर्वक विचार करें तो फिर दुःख नामकी कोई वस्तु नहीं रह जाती और हम हर-हालतमें भगवान्के मङ्गलविधानका दर्शन करके भगवान्के मङ्गलमय कर-कमलका स्पर्श पाकर आनन्दमुग्ध रह सकते हैं।

३-जगत्में वास्तवमें दो ही तत्त्व हैं—भगवान् और भगवान्की लीला। 'जो कुछ है, सब भगवान् हैं और जो कुछ हो रहा है, सब भगवान्की लीला हो रही है।' लीलामय और लीलामें वैसे ही अभेद है जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्तिमें। अथवा सूर्य और सूर्यके प्रकाशमें। अतः हमारे साथ जो कुछ हो रहा है, सब हमारे प्रियतम भगवान्की लीला ही हो रही है। इस लीलाका संस्पर्श वस्तुतः लीलामय भगवान्का ही संस्पर्श है। विश्वासपूर्वक इस प्रकारका भाव हो जानेपर दुःखका सर्वथा अभाव हो जाता है। क्षण-क्षणमें प्रत्येक सुख-दुःखसंज्ञक भोगोंमें लीलाविहारी भगवान्का मङ्गलमय स्पर्श प्राप्त होता रहता है, जिससे नित्य नव-नव आनन्दरसकी धारा बहती रहती है।

ये तीनों ही बातें सिद्धान्ततः सत्य हैं। जगत् स्वप्नवत् है—केवल ब्रह्म ही व्याप्त है। जगत्में सब कुछ मङ्गलमय भगवान्के मङ्गल विधानसे मङ्गल ही हो रहा है और जगत्में भगवान् ही अपने-आपसे आप ही खेल रहे हैं। तीनोंका ही तात्त्विक स्वरूप एक ही है। यह वस्तुतः सत्यको सत्यमें देखना है, जो मानव-जीवनका परम कर्तव्य है। इसीका फल भगवत्प्राप्ति या पूर्ण सुखरूप मोक्ष है।

इस प्रकार अशेष दुःखोंसे छूटकर मनुष्य भगवत्कृपासे अपनी इसी आयुमें अखण्ड और पूर्ण सुखकी प्राप्ति कर सकता है। इच्छा, विश्वास और तत्परता होनी चाहिये।

# त्रिभुवन-विजयके तीन सरल साधन

(श्रीबनवारीलालजी गुप्त)

मानव-जीवनके अभ्युत्थानके लिये तीन सरल साधन बताये गये हैं। यदि मानव अपने आचरण और व्यवहारमें इन बातोंका प्रयत्नपूर्वक पालन करे तो उसके आध्यात्मिक जीवनका पथ प्रशस्त हो जाता है। इस सम्बन्धमें एक श्लोक प्रसिद्ध है—

**मूकः परापवादे परदारनिरीक्षणेऽप्यन्धः।**
**पङ्गुः परधनहरणे स जयति लोकत्रये पूरुषः॥**

इसका भाव यह है कि जो व्यक्ति परनिन्दामें मूक, परस्त्रियोंके देखनेमें अन्धेके समान तथा दूसरेका धन अपहरण करनेमें पङ्गुवत् रहता है, वह पुरुष तीनों लोकोंमें श्रेष्ठ है। इन तीन बातोंकी साधना जो व्यक्ति अपने जीवनमें उतार लेता है, वह तीनों लोकोंको जीत सकता है। इन तीन साधनोंका संक्षेपमें विचार किया जा रहा है—

(१) वाणीसे किसीकी भी निन्दा नहीं करनी चाहिये। परापवादमें तो वाणीको मूक ही बनाये रखना चाहिये। जब मन कलुषित और अन्तःकरण दूषित हो जाता है, बुद्धि विकृत हो जाती है, तब हम दूसरोंके दोषों, बुराइयों, गलतियों तथा निन्दा आदिमें रस लेने लगते हैं तथा हमारे कानोंको भी दूसरोंकी निन्दा सुननेमें रस या आनन्द मिलने लगता है। यह निन्दा-रस पतनकी ओर ले जानेवाला है। साधकको चाहिये कि वह अपनी वाणी तथा कानोंपर पूर्ण नियन्त्रण रखे, इसके लिये सद्ग्रन्थोंका स्वाध्याय तथा सत्संगति आदिका आश्रय लेते हुए

अन्तःकरणको सर्वथा शुद्ध और निर्मल बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि षड्रिपुओंपर विजय प्राप्त करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये। यदि हम यह प्रण कर लें कि वाणीसे हम कभी असत्य नहीं बोलेंगे, किसीकी निन्दा नहीं करेंगे, न किसीकी निन्दा सुनेंगे, व्यर्थ बकवाद आदिको त्यागकर आवश्यकतानुसार ही वाणीका प्रयोग करेंगे तथा शान्त रहनेकी चेष्टा करेंगे तो इससे वाणीके व्यवहारोंपर पूर्ण नियन्त्रण हो सकता है, यह कोई असम्भव बात नहीं है। कुछ ही समयके प्रयाससे अद्भुत आन्तरिक शक्तिके लक्षण प्रकट होते दीख पड़ेंगे। प्रारम्भमें बहुत दिनोंके अभ्याससे कुछ कठिनाई अवश्य हो सकती है, किंतु धीरे-धीरे वह भी दूर हो जायगी।

(२) जब मन दूषित हो, हृदय कलुषित हो, बुद्धि विकृत हो, तब सर्वत्र ही परदार-निरीक्षणमें अंधा बन जाना या दृष्टि मोड़ लेना या वहाँसे हट जाना ही श्रेयस्कर है; क्योंकि मायाका आकर्षण बड़ा ही प्रबल होता है। परदाराको मातृवत्-बुद्धिसे ही देखना चाहिये। मनसे सर्वथा कुविचारोंको हटाकर, वासनाजालको समाप्त कर अपनी दृष्टिको सर्वथा पवित्र एवं शुद्ध बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। जिस व्यक्तिकी मनसहित नेत्रादि इन्द्रियाँ वशमें हों, वही समाहित-चित्त होकर सांसारिक विषयोंसे दृष्टि हटाकर परमात्म-स्वरूपमें स्वबुद्धिको स्थिर रखनेमें समर्थ हो सकता है। गीतामें भगवान्‌ने कहा है कि काम, क्रोध और लोभ—ये तीनों नरकके द्वार हैं—

**'त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।'**

—इसलिये इन तीनोंसे सर्वथा दूर रहना चाहिये। मनद्वारा नेत्रादि इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करनेसे मनुष्यमें उनके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है। आसक्तिसे कामवासना और इसकी अपूर्तिमें द्वेष-बुद्धिसे क्रोध उत्पन्न होता है तथा ज्ञान-शक्तिका विनाश होता है। यह विषयोंका चिन्तन और उनका संग महाविनाशकारी शत्रु है और सभी अनर्थोंका मूल कारण है। अतः भोगकी कामनाओंका परित्याग करनेका प्रयत्न करना चाहिये। पर-स्त्रीमें माता एवं बहनके समान पवित्र भावना रखनी चाहिये, इससे नेत्र भी पवित्र हो जायँगे और कभी भी दोष-बुद्धि नहीं होने पायगी।

(३) अनैतिकतासे दूसरेका धन लेना पाप है, साथ ही बड़ा भारी सामाजिक अपराध भी है। दूसरेकी आत्माको दुःखी कर धन लेनेसे लँगड़ा हो जाना अच्छा है। कुछ लोग कुसंग और कुपंथमें पड़कर धर्ममर्यादाका त्याग कर देते हैं और अन्यायोपार्जित धनको प्रतिष्ठा, मान-बड़ाईकी वस्तु समझते हैं। इसके लिये वे चोरी, जुआ, विश्वासघात, छल-प्रपञ्च, रिश्वत, भ्रष्टाचार तथा मिलावट आदि घृणित एवं निन्दनीय दुष्कर्मोंको भी करनेसे नहीं हिचकते। धन-संग्रहकी यह विनाशकारी प्रवृत्ति आज सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हो गयी है और इसके परिणामस्वरूप अनेक उपद्रव भी सर्वत्र दिखलायी पड़ते हैं। अतः इस प्रवृत्तिका परित्याग करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। न्यायोचित मार्गसे उपार्जित धनका उपयोग सत्कार्योंमें करना चाहिये, उसे दीन-दुःखियोंकी सेवामें लगाना चाहिये, दानादि पुण्य-कार्योंका अनुष्ठान करना चाहिये। दूसरेके द्रव्यमें किञ्चित् भी लालसा नहीं रखनी चाहिये। उसे लोष्ठवत् समझना चाहिये। आज मानवकी यह दशा होती जा रही है कि वह किसी भी चेष्टासे धनार्जनके लिये लालायित दीखता है। इस कारण आध्यात्मिकता, धार्मिकताकी भावना उसके हृदयसे दूर होती जा रही है। यह पतनका ही मार्ग है। अतः इससे सदा सावधान रहना चाहिये। इन बातोंका हम ध्यान रखते हुए पालन करें तो जीवनमें हमारी सच्ची उन्नति होगी।

ये सभी साधन साधककी उन्नतिके लिये उपयोगी अवश्य हैं, किंतु सर्वाधिक सुन्दर और तत्क्षण प्रभावकारी साधन है—भगवत्-शरणागति। जिस-किसी भी प्रकारसे भगवान्‌के नाम, यश, रूप, लीला आदिका आश्रयण जीवात्माको तत्क्षण परमात्माके सम्मुख लाकर खड़ा कर देता है और जैसे ही वह परमात्माके ध्यानमें संलग्न होता है, परमात्मा उसके करोड़ों जन्मोंके पाप नष्ट कर देते हैं और वह संसार-सागरसे पार हो जाता है, भगवान्‌की वाणी है—

**सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥**

ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण आदिकी स्थिति ऐसी ही हुई। अतः साधकोंको इन सभी साधनोंकी साधनाके साथ-साथ भगवान्‌के नाम, रूप, लीला आदिका आश्रय अवश्य ग्रहण करना चाहिये।

# साधकोंके प्रति—
## संघर्षका कारण

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

आजकल ऐसा प्रचार किया जाता है कि जातिभेदके कारण ही समाजमें संघर्ष होता है; अतः जातिभेदको नहीं मानना चाहिये। यह बिलकुल गलत मान्यता है। वास्तवमें संघर्ष जातिको लेकर नहीं होता, प्रत्युत अहंकारसे पैदा होनेवाले स्वार्थ और अभिमानको लेकर होता है।

सृष्टिमें जातिभेद स्वाभाविक है। विभिन्न देशोंमें मनुष्योंकी अनेक जातियाँ विद्यमान हैं। केवल मनुष्यमें ही नहीं, प्रत्युत पशु-पक्षी, वृक्ष-लता आदिमें भी जातिभेद स्वाभाविक विद्यमान है। गाय, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़ा, ऊँट, कुत्ता आदिकी अनेक जातियाँ हैं और उनकी एक-एक जातिमें भी अनेक भेद हैं। जातिसे ही उनके गुणोंकी पहचान होती है। इनका क्रय-विक्रय करनेवाले लोग इनकी जातियोंसे भलीभाँति परिचित होते हैं। जातिको देखकर ही इनका मूल्य लगाया जाता है। ऐसे ही वृक्षोंमें भी एक-एक वृक्षकी अनेक जातियाँ होती हैं। फलों तथा सब्जियोंमें और अनाजोंमें भी अनेक जातियाँ होती हैं। इस जातिभेदका कारण यह है कि सृष्टि विषम है और इसमें एक समान दीखनेवाली दो चीजें भी वास्तवमें समान नहीं होतीं। अतः विरोधका कारण जाति नहीं है। स्वार्थ और अभिमानको लेकर ही सब विरोध पैदा होते हैं, जो कि आसुरी सम्पत्ति है।

एक बात यह भी देखनेमें आती है कि अलग-अलग जातिमें परस्पर लड़ाई या विरोध नहीं होता, प्रत्युत एक ही जातिमें परस्पर स्वार्थ और अभिमानको लेकर विरोध होता है। जैसे, पुरुष जातिका पुरुष जातिसे और स्त्री जातिका स्त्री जातिसे विरोध होता है। पशुओंमें भी नरकी लड़ाई नरसे और मादाकी लड़ाई मादासे होती है। जैसे, कुत्ता कुत्तेसे ही लड़ता है और कुतिया कुतियासे ही लड़ती है, दूसरा इस लड़ाईमें सहायकमात्र होता है। बंदरोंमें भी बँदरियोंके समूहमें एक बंदर होता है। अगर किसी बँदरियाका नर बच्चा पैदा होता है तो वह उसको लेकर भाग जाती है, क्योंकि अपने भोगका स्वार्थ रहनेसे बंदर उस नर बच्चेको मार डालता है! परंतु मादा बच्चा पैदा होनेपर वह उसको नहीं मारता। यही बात कुत्तोंमें भी पायी जाती है। नर बच्चा पैदा हो तो उसको कुत्ता मार देता है और मादा बच्चा पैदा हो तो उसको कुतिया मार देती है।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके बीच परस्पर लड़ाई या विरोध नहीं होता। ब्राह्मणका ब्राह्मणसे, क्षत्रियका क्षत्रियसे, वैश्यका वैश्यसे और शूद्रका शूद्रसे विरोध होता है। तात्पर्य है कि जहाँ एक जीविका होती है, वहीं स्वार्थवश लड़ाई होती है। अगर सब काममें सबका अधिकार मान लिया जाय तो इससे संघर्ष बहुत ज्यादा बढ़ेगा। कारण कि ऐसा माननेसे जिस जीविकासे अधिक रुपये, मान-बड़ाई आदि प्राप्त होते हों, उसको सब करने लगेंगे और जिस जीविकामें रुपये, मान-बड़ाई आदि कम प्राप्त होते हों, उसको कोई नहीं करेगा। ऊँचा काम सब करना चाहेंगे, पर नीचा काम कोई करना नहीं चाहेगा। जैसे, पहले राज्यके लिये केवल राजपूत ही लड़ते थे, पर अब राज्यके लिये सभी लड़ते हैं। पहले चारों वर्ण अपना-अपना कार्य करते थे, पर अब चारों वर्णोंके कामोंमें सबका अधिकार होनेसे संघर्ष भी कम-से-कम सोलह गुना तो बढ़ेगा ही! पहले लोग अपने-अपने वर्ण और आश्रमकी मर्यादामें चलते थे और सुख-शान्तिपूर्वक रहते थे। परंतु आज वर्णाश्रमकी मर्यादाको मिटाकर स्वार्थवश अनेक पार्टियाँ बन रही हैं, जो राज्यके लिये आपसमें लड़ती हैं। दूसरे सम्प्रदायवालोंके वोटके लिये हिन्दू ही हिन्दुओंका नाश कर रहे हैं! माँ, बाप और बेटा—तीनों अलग-अलग पार्टियोंको वोट देते हैं और घरमें लड़ते हैं! प्रचार तो यह किया जाता है कि सबमें परस्पर एकता होनी चाहिये, पर वास्तवमें एक-एकता हो रही है अर्थात् माँ अलग, बाप अलग, बेटा अलग, भाई अलग—सब एक-एक हो रहे हैं! कारण यह है कि वर्णाश्रमकी रचना तो मर्यादा, कर्तव्यको लेकर हुई थी, पर पार्टियोंकी रचना स्वार्थको लेकर हुई है।

स्वार्थ और अभिमानके कारण ही विभिन्न वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय आदिके मनुष्योंमें अपने वर्ण आदिका पक्षपात रहता है, जिससे वे अपने वर्ण आदिका मण्डन और दूसरेके वर्ण आदिका खण्डन करते हैं। इस विषयमें एक कहानी है—एक

वेश्या थी। उसके मनमें विचार आया कि मेरा कल्याण कैसे हो ! अपने कल्याणके लिये वह साधुओंके पास गयी। उन्होंने कहा कि 'तुम साधुओंका संग करो। साधु त्यागी होते हैं, इसलिये उनकी सेवा करो तो कल्याण होगा।' फिर वह ब्राह्मणोंके पास गयी तो उन्होंने कहा कि 'साधु तो बनावटी हैं, पर हम जन्मसे ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण सबका गुरु होता है। अतः तुम ब्राह्मणोंकी सेवा करो तो कल्याण होगा।' इसके बाद वह संन्यासियोंके पास गयी तो उन्होंने कहा—'संन्यासी सब वर्णोंका गुरु होता है, इसलिये उसकी सेवा करनेसे कल्याण होगा।' फिर वह वैरागियोंके पास गयी तो उन्होंने कहा कि 'वैरागी सबसे तेज होता है; अतः उसकी सेवा करो तो कल्याण होगा।' फिर वह अलग-अलग सम्प्रदायोंके गुरुओंके पास गयी तो उन्होंने कहा कि 'हम सबसे ऊँचे हैं, शेष सब पाखण्डी हैं, तुम हमारी चेली बन जाओ, हमारेसे मन्त्र लो, तब हम वह बात बतायेंगे, जिससे तुम्हारा कल्याण हो जायगा।' इस प्रकार वह वेश्या जहाँ भी गयी, वहीं उसको अपने-अपने वर्ण, आश्रम, मत, सम्प्रदाय आदिका पक्षपात दिखायी दिया। यह देखकर उसके मनमें आया कि अब तत्त्व समझमें आ गया ! युक्ति हाथ लग गयी ! साधु कहते हैं कि साधुओंको पूजो, ब्राह्मण कहते हैं कि ब्राह्मणोंको पूजो तो हम क्यों न वेश्याओंको पूजें ! ऐसा सोचकर उसने वेश्याभोज करनेका विचार किया। उसमें सब वेश्याओंको निमन्त्रण दिया। निश्चित समयपर सब वेश्याएँ वहाँ आने लगीं।

उस गाँवके बाहर एक विरक्त, त्यागी संत रहते थे। उन्होंने देखा तो विचार किया कि आज क्या बात है ? जब उनको मालूम हुआ कि आज वेश्याभोज हो रहा है तो वे वेश्याको क्रियात्मक शिक्षा देनेके लिये वहाँ पहुँच गये। रसोई बन रही थी। रसोई बनानेवालोंने पकाये हुए चावलोंका पानी (माँड़) नालीमें गिराया। वेश्या छतपर खड़ी होकर जिधर देख रही थी, उधर बाबाजी बैठ गये और उस माँड़से हाथ धोने लगे। वेश्याने देखा तो बोली कि 'बाबाजी ! यह क्या कर रहे हो ?' बाबाजीने कहा कि 'तू अन्धी है क्या ? तेरेको दिखायी नहीं देता, मैं तो अपने हाथ धो रहा हूँ।' वेश्याने बाबाजीको ऐसा करनेसे रोका तो वे माने नहीं। वेश्या उतरकर नीचे आयी और बोली कि 'बाबाजी ! यह चावलोंका पानी है, इससे तो हाथ और मैले होंगे। आप साफ पानीसे हाथ धोओ।' बाबाजीने कहा कि 'अगर इससे हाथ मैले हो जायँगे तो क्या वेश्याएँ ज्यादा साफ, निर्मल हैं, जिससे इनकी सेवासे कल्याण हो जायगा ? हाथ मैले पानीसे साफ होते हैं या साफ पानीसे ?' यह सुनकर वेश्याको होश आया कि बाबाजी बात तो ठीक कहते हैं ! तो फिर कल्याण कैसे होगा ? बाबाजी बोले—जिस संतमें किसी मत, सम्प्रदाय आदिका पक्षपात, आग्रह न हो, जिसके आचरण शुद्ध हों, जिसके भीतर एक ही भाव हो कि जीवका कल्याण कैसे हो, जिसमें किसी प्रकारकी कामना न हो—वह संत चाहे स्त्री हो या पुरुष, साधु हो या ब्राह्मण, किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय आदिका क्यों न हो, उस संतका संग करो, उनकी बातें सुनो तो कल्याण होगा।

तात्पर्य यह हुआ कि जहाँ स्वार्थ और अभिमान होगा, भोग और संग्रहकी इच्छा होगी, वहाँ आसुरी सम्पत्ति आयेगी ही। जहाँ आसुरी सम्पत्ति आयेगी, वहाँ शान्ति नहीं रहेगी, प्रत्युत अशान्ति होगी, संघर्ष होगा, पतन होगा।

## सदा-सर्वत्र एक ईश्वर ही सत्य है

**मेरे बाहर-भीतर, जंगल-घर सभी स्थानोंमें, ऊपर-नीचे, दायें-बायें, सभी दिशाओंमें, रात-दिन, संध्या-प्रातः सभी कालोंमें ईश्वर छाया है। ईश्वर ही मेरे जड शरीररूपमें अभिव्यक्त है। इस शरीरसे होनेवाला सब कुछ ईश्वरका ही लीला-कार्य—खेल है। वही कर्ता है, वही कर्म है, वही भोक्ता है, वही भोग्य है। मैं तो ईश्वरका केवल एक संकल्पमात्र हूँ। जबतक उसका संकल्प है, तभीतक मेरी सत्ता है। संकल्प छूटा कि फिर तो ईश्वर-ही-ईश्वर है। यह परम सत्य है और यह सत्य भी ईश्वर ही है। सदा-सर्वत्र एक ईश्वर ही सत्य है।**

# पशुओंकी रक्षा और कल्याणकी आवश्यकता

(श्रीपन्नालालजी मुन्धड़ा)

सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टिसे अति आवश्यक होनेके कारण भारत सरकारने पशुओंकी रक्षा और उनके कल्याण-हेतु क्रूरता-निवारण-अधिनियमकी रचना की, जिससे पशुओंपर हो रहे विभिन्न अत्याचारोंसे—जैसे मुर्गियोंको साइकिलोंपर लटकाकर ले जाना, उन्हें छोटे-छोटे पिंजड़ोंमें बंदकर कष्ट देना, गाड़ियोंमें ठूस-ठूसकर असहनीय वेदनापूर्ण स्थितिमें उन्हें लाना और ले जाना, सुअरोंको आगपर सीधे ही जलाकर मार डालना, पशुओंकी जीवित अवस्थामें ही खाल उतारना, ऊँटोंको गरम पीचकी सड़कोंपर चलाना, पशु-वाहनोंपर निर्धारित सीमासे अधिक माल लादकर उन्हें त्रास देना, अधिक दूधकी प्राप्तिके लालचमें दवाइयोंकी सुइयाँ देना तथा कृत्रिम गर्भाधान कराना और पशुओंको असहनीय वेदना देकर मनोरञ्जन-हेतु उनका उपयोग करना तथा मांसादिके लिये अत्यन्त निर्दयतापूर्वक निर्दोष गाय आदि पशुओंकी हत्या करना आदि अनेकानेक कष्टोंसे—उनकी रक्षा की जा सके। **'मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि'** अर्थात् किसी भी जीवको कष्ट न दें और **'अहिंसा परमो धर्मः'** अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है—ये दो सिद्धान्त भारतीय संस्कृतिकी आधार-शिला हैं। इन आधार-शिलाओंका स्थायित्व रखनेके लिये यह आवश्यक है कि पशुओंके प्रति आदर एवं दयाका भाव रखते हुए उन्हें मातृतुल्य ही समझना चाहिये। ऋषि-मुनियोंने कहा है कि जिन्हें हम जीवन नहीं दे सकते, उनका जीवन लेनेका हमें कोई अधिकार नहीं है।

यह सर्वविदित है कि 'जैसा खाये अन्न वैसा होवे मन' यानी जो जिस प्रकारका भोजन करता है, उसकी कार्यशैली और विचारधारा भी उसी प्रकारकी हो जाती है। अभी कुछ दिनों पूर्व अमेरिकामें पाँच सौ जघन्य अपराधियोंको तीन महीनेतक केवल दूध तथा दूधसे बने पदार्थ, फल-साग और अन्न खिलाया गया एवं यह देखा गया कि तीन महीनोंमें ही उनके विचारोंमें भारी परिवर्तन आने लगा तथा वे अपने अपराधोंके लिये पश्चात्ताप करने लगे। एक और परीक्षण दो घोड़ोंपर किया गया, जिसमें एक घोड़ेको गायका दूध पिलाया गया और एक घोड़ेको भैंसका दूध। उन दोनों घोड़ोंको एक छोटी नदी पार करनेके लिये छोड़ दिया गया। जिस घोड़ेने गायका दूध पिया था, वह नदी पार कर गया, किंतु जिस घोड़ेने भैंसका दूध पिया था, वह भैंसकी तरह पानीमें बैठ गया। अच्छे स्वस्थ समाजके लिये अच्छे स्वास्थ्यवाले लोगोंकी आवश्यकता होती है एवं स्वास्थ्यको ही सर्वश्रेष्ठ धन माना गया है। अच्छे स्वास्थ्यके लिये मनुष्यको यथोचित अपनी शक्तिके अनुसार ही स्वल्प एवं सात्त्विक आहार ग्रहण करना चाहिये। मनुष्य शाकाहारी है, इसका प्रमाण पशुओंकी भोजन-शैलीपर विचार करनेसे स्पष्ट हो जाता है। शाकाहारी पशु—गाय, भैंस, गदहा, घोड़ा आदि होंठोंके माध्यमसे सुबड़कर तरल पदार्थ पीते हैं, मनुष्य भी होंठोंके द्वारा ही तरल पदार्थ पीता है, जब कि मांसाहारी पशु जीभसे चाटकर तरल पदार्थ पीते हैं, जैसे कुत्ता, बिल्ली और बाघ आदि।

मांसाहारी जीवोंके आँतोंकी लंबाई उनके शरीरके आकारसे छः गुनी लंबी तथा उनका लिवर बड़ा होता है। जब कि शाकाहारी पशुओंकी आँतोंकी लंबाई उनके शरीरके आकारसे बारह गुनी लंबी तथा लिवर छोटा होता है, क्योंकि मांस ज्यादा देरतक आँतोंकी नलियोंमें नहीं रह सकता, सड़ने लग जाता है। इसलिये वह लिवरमें चला जाता है। जब कि शाकाहारी भोजन सुपाच्य है और नलियोंमें रह सकता है, इसलिये बड़ी लिवरकी आवश्यकता नहीं होती। मनुष्यकी आँतोंकी लंबाई भी उसके शरीरके आकारसे बारह गुनी लंबी होती है। डॉक्टरोंका मत है कि मांसाहारी चार सौ प्रकारके प्राणलेवा बीमारियोंसे ग्रस्त होते हैं, जब कि शाकाहारी दो सौ साठ बीमारियोंसे। क्योंकि शाकाहारीके शरीरमें वे रोग-कीटाणु नहीं प्रवेश कर सकते, जो पशुओंके मांसके साथ मांसाहारीके शरीरमें स्वाभाविक रूपसे प्रवेश कर जाते हैं।

पशु न केवल अपने दूधके द्वारा या माल ढोने, हल चलाने आदि कार्योंके द्वारा समाजकी आर्थिक उन्नतिमें सहायक होता है, बल्कि उपलब्ध आँकड़े इस सत्यको प्रमाणित करते हैं कि बूढ़ा, बच्चा एवं बिना दूध देनेवाला पशु भी मात्र अपने गोबर और गोमूत्रसे बीस हजार रुपये प्रति सालतकका लाभ दे सकता है।

आज जब संसार महायुद्धके कगारपर खड़ा है एवं पेट्रोलियम पदार्थोंका संकट प्रत्यक्ष नजर आ रहा है, ऐसेमें पशुओंकी रक्षा एवं उनका कल्याण करना ही एकमात्र उद्धारका पथ दिखलायी पड़ता है। इसलिये यह अति आवश्यक है कि सरकारें अधिनियमके द्वारा देशके सभी कसाईखानोंको अविलम्ब बंद करें और सभी लोग शुद्ध शाकाहारी भोजन अपनायें।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हिन्दू, जैन, बौद्ध आदि सभी धर्मोंके अनुसार समस्त प्राणियोंमें परमेश्वरका निवास है, इसलिये अहिंसाको ही सर्वोपरि धर्म माना गया है। अतः सभी प्राणियोंमें ईश्वरकी भावना करते हुए उन्हें मनसे प्रणाम करना चाहिये। इससे उसके हृदयमें परमशान्तिकी प्राप्ति होती है। प्राणियोंकी हिंसावृत्ति व्यक्तिको नरककी ओर ले जाती है। अतः सभीमें भगवद्भावना रखते हुए उनकी सेवासे उन्हें सुख पहुँचानेका प्रयत्न करना चाहिये। किसी भी प्राणीके प्रति लेशमात्र भी अनिष्टकी कामना नहीं करनी चाहिये, यही मानवोचित सात्त्विक बुद्धि है।

# करनेमें सावधान होनेमें प्रसन्न

**[ श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंके आधारपर ]**

**( संकलनकर्ता—डॉ० श्रीबद्रीप्रसादजी गुप्ता )**

मनुष्यकी उन्नतिमें महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वह करनेमें सावधान रहे और होनेमें प्रसन्न। एक 'करना' होता है और एक 'होना' होता है। दोनों विभाग अलग-अलग हैं। करनेकी चीज है कर्तव्य और होनेकी चीज है फल। मनुष्यका कर्म करनेमें अधिकार है, फलमें नहीं।

**कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।**

(गीता २।४७)

तात्पर्य यह कि होनेकी पूर्ति प्रारब्धके अनुसार अवश्य होती है। उसके लिये 'यह होना चाहिये और यह नहीं होना चाहिये'—ऐसी इच्छा नहीं करनी चाहिये। और करनेमें शास्त्र तथा लोकमर्यादाके अनुसार कर्तव्य कर्म करना चाहिये। 'करना' पुरुषार्थके आधीन है और 'होना' प्रारब्धके आधीन। इसलिये मनुष्य करनेमें स्वाधीन है और होनेमें पराधीन।

कर्म तीन प्रकारके होते हैं—क्रियमाण, संचित और प्रारब्ध। वर्तमानमें जो कर्म किये जाते हैं वे क्रियमाण कर्म कहलाते हैं। वर्तमानसे पहले इस जन्ममें किये हुए, अथवा पहलेके अनेक जन्मोंमें किये हुए जो संगृहीत हैं, वे संचित कर्म कहलाते हैं। संचितमेंसे जो कर्म फल देनेके लिये, इस जीवनके लिये प्रस्तुत हो गये हैं—अर्थात् जन्म, आयु और सुखदायी-दुःखदायी परिस्थितिके रूपमें परिणत होनेके लिये सामने आ गये हैं, वे प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं। क्रियमाण कर्म जैसे होंगे, उन्हींके अनुसार संचित और प्रारब्ध कर्म होंगे। क्रियमाण कर्म दो तरहके होते हैं—शुभ और अशुभ। जो कर्म शास्त्रके अनुसार किये जाते हैं, वे शुभ कर्म कहलाते हैं। काम, क्रोध, लोभ, आसक्ति आदिको लेकर जो शास्त्र-निषिद्ध कर्म किये जाते हैं, वे अशुभ कर्म कहलाते हैं। मनुष्य जैसा कर्म करता है, फलस्वरूप वैसी ही परिस्थिति उसे मिलती है। शुभ कर्म करनेपर अनुकूल परिस्थिति मिलती है और अशुभ कर्म करनेपर प्रतिकूल परिस्थिति मिलती है। शुभ और अशुभ कर्मोंका अलग-अलग संग्रह होता है। स्वाभाविक रूपसे ये दोनों एक दूसरेको काटते नहीं। अर्थात् पापोंसे पुण्य नहीं कटते और पुण्यसे पाप नहीं कटते। मनुष्यके कब किये हुए पापका फल कब मिलेगा इसका कुछ पता नहीं। भगवान्का विधान विचित्र है। जबतक पुराने पुण्य प्रबल रहते हैं, तबतक उग्र पापका फल भी तत्काल नहीं मिलता। जब पुराने पाप समाप्त होते हैं, तब इस पापकी बारी आती है। पापका फल तो भोगना ही पड़ेगा—चाहे इस जन्ममें या जन्मान्तरमें। अतः कर्म करनेमें मनुष्यको सावधान रहना चाहिये। पाप कर्म न करे अन्यथा दुःख भोगना ही पड़ेगा।

इसमें एक बात और समझ लेनी चाहिये। कर्मोंका फल सुख-दुःख नहीं है, बल्कि अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितिका होना है। प्रतिकूल परिस्थितिमें मनुष्य दुःखी होता है तो यह कर्मका फल नहीं, बल्कि मूर्खताका फल है। प्रतिकूल परिस्थिति तो कल्याणके लिये अधिक लाभदायक है, अनुकूल परिस्थितिमें हम संसारसे चिपक जाते हैं। संसारसे हटनेमें मेहनत पड़ती है। प्रतिकूल परिस्थितिमें संसारसे हटनेमें

मेहनत नहीं पड़ती। प्रतिकूल परिस्थिति परमात्माकी प्राप्तिमें मुख्य साधन है। भगवान् प्रतिकूल परिस्थिति उनको देते हैं जिनपर विशेष कृपा है और अपनापन है। इसमें पापोंका नाश होता है, जीवनका विकास होता है। दुःखमें प्रभुका तथा संतोंका विशेषतासे सहयोग मिलता है। दुःखमें आदमी सावधान रहता है। दुःखी आदमी भोगोंमें नहीं फँसता, उपराम रहता है। कुन्तीने भगवान्से दुःखका वरदान माँगा था।

यदि जीवनमें प्रतिकूलता आवे तो समझना चाहिये कि मेरे ऊपर भगवान्की बहुत अधिक दुनियासे निराली कृपा हो गयी है। प्रतिकूलतामें बहुत आनन्द, शान्ति और प्रसन्नता है। प्रतिकूलताकी प्राप्ति मानो साक्षात् परमात्म-तत्त्वकी प्राप्ति है। भगवान्ने कहा है—

**नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥**

(गीता १३। ९)

प्रतिकूलता आनेपर प्रसन्न रहना—यह समताकी जननी है। गीतामें समताकी बहुत प्रशंसा की गयी है। जो प्रतिकूल-से-प्रतिकूल परिस्थितिमें प्रसन्न रहे, उसकी बुद्धि परमात्मामें बहुत जल्दी स्थिर होगी। कारण कि प्रतिकूलतामें होनेवाली प्रसन्नता समताकी माता (जननी) है। अगर यह प्रसन्नता मिल जाय तो समझना चाहिये कि समताकी तो माँ मिल गयी और परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिकी दादी या नानी मिल गयी। प्रतिकूलता तो भगवान्का भेजा हुआ कृपापूर्ण प्रसाद है।

प्रत्येक परिस्थिति साधन-सामग्री है। साधकको सुखदायी और दुःखदायी परिस्थितिका सदुपयोग करना चाहिये। सुखदायी परिस्थिति आ जाय तो अनुकूल सामग्रीको दूसरोंके हितके लिये सेवा-बुद्धिसे खर्च करना सुखदायी परिस्थितिका सदुपयोग है। उसका सुख-बुद्धिसे भोग करना दुरुपयोग है। ऐसे ही दुःखदायी परिस्थिति आ जाय तो सुखकी इच्छाका त्याग करना और उन्नतिके लिये ही प्रभु-कृपासे ऐसी परिस्थिति आयी है—ऐसा समझकर प्रसन्न रहना दुःखदायी परिस्थितिका सदुपयोग है और उससे दुःखी होना दुरुपयोग है।

कभी-कभी हम समझते हैं कि अमुक व्यक्तिने हमें दुःख दे दिया। ऐसा समझना ठीक नहीं है। दुःख तो कोई देता ही नहीं, दे सकता नहीं। दुःख तो प्रारब्धके फलस्वरूप आता है। जो दुःख आनेवाला है वह आकर ही रहेगा। उसके लिये निमित्त भी कोई-न-कोई बन ही जाता है। किसी व्यक्तिको इसके लिये दोष देना निरर्थक है। जो निमित्त बनता है उसपर तो दया आनी चाहिये, क्योंकि वह स्वयं पापका भागी बनकर हमारा पाप नष्ट करता है। हम उसे बुरा समझेंगे तो हमारा अन्तःकरण मैला हो जायगा। संसारजनित सुख भोगनेसे दुःख तो आवेगा ही। यह तो जहरके लड्डू हैं। सुख-भोग हम छोड़ते नहीं, तो दुःख हमें छोड़ेगा नहीं। अतः कर्म करनेमें सावधान रहना चाहिये ताकि दुःखदायी परिस्थिति आवे ही नहीं।

कुछ लोग तो यहाँ तक कह देते हैं कि भगवान्ने दुःख दे दिया। ऐसा सोचना ठीक नहीं। भगवान्के पास दुःख है ही नहीं, वे किसीको दुःख देते ही नहीं। उनके यहाँ तो आनन्द-ही-आनन्द है। भगवान्ने कर्म करनेकी स्वतन्त्रता दी है। मनुष्य स्वतन्त्रताका सदुपयोग भी कर सकता है, दुरुपयोग भी। स्वतन्त्रता दी है कल्याण करनेके लिये, पाप करनेके लिये नहीं। पाप तो मनुष्य अपनी मर्जीसे कामनाके वशीभूत होकर करता है। उसमें भगवान्की मर्जी नहीं है। स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करनेसे पाप होता है, अतः विवेकको काममें लाकर स्वतन्त्रताको कल्याण करनेमें लगाना चाहिये।

आजकल ऐसा भी देखा जाता है कि जो लोग बेईमानी, धोखेबाजी, अन्यायसे पैसा कमाते हैं, वे बड़े आरामसे रहते हैं, उनको सभी सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं। जो शुभ कर्म करते हैं वे कष्ट पाते हैं। शंका यह होती है कि इसमें ईश्वरका न्याय कहाँ है? इसका समाधान यह है कि जो लोग पाप करके भी सुख भोग रहे हैं, वह उनके पुराने पुण्योंका फल है। पुण्योंका असर समाप्त होते ही उन लोगोंकी सुख-सुविधाकी सामग्री कम हो जायगी। वर्तमानमें वे पाप और अन्याय करते हैं तो उसका फल भी कालान्तरमें भोगना पड़ेगा। दिखायी पड़ता है कि अन्याय करनेवाले सुख भोग रहे हैं, परंतु वास्तवमें उनके मनमें बड़ी अशान्ति रहती है और वे नरकोंमें जानेकी तैयारी कर रहे हैं।

एक शंका और भी उठती है कि कर्मोंमें मनुष्यके प्रारब्धकी प्रधानता है या पुरुषार्थकी? मनुष्यकी चार तरहकी चाहनाएँ हुआ करती हैं—अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। इन चारोंमें अर्थ (धन) और काम (भोग) की प्राप्तिमें प्रारब्धकी प्रधानता है और पुरुषार्थकी गौणता है। धर्म और मोक्षमें

पुरुषार्थकी मुख्यता है और प्रारब्धकी गौणता है। प्रारब्ध और पुरुषार्थ—दोनोंका क्षेत्र अलग-अलग है और दोनों ही अपने-अपने क्षेत्रमें प्रधान हैं। इस वास्ते कहा गया है कि अपनी स्त्री, पुत्र, परिवार, भोजन और धनमें संतोष करना चाहिये, क्योंकि ये प्रारब्धके फलस्वरूप मिलते हैं। सत्संग, स्वाध्याय, पाठ-पूजा, नाम-जप, कीर्तन, दान करनेमें कभी संतोष नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह नया पुरुषार्थ है और इसी पुरुषार्थके लिये मनुष्य-शरीर मिला है।

भगवान्‌का भक्त प्रतिकूल परिस्थितिमें भगवान्‌का प्रसाद मानकर विशेष प्रसन्नताका अनुभव करता है। वह समझता है कि भगवान्‌का हर विधान मङ्गलमय है। ऐसा माननेसे उसका भगवान्‌से अपनापन है, प्रेम है, समर्पण है या कहिये शरणागति है। अतः प्रतिकूल परिस्थितिमें भगवत्प्राप्ति सुगमतासे हो जाती है।

मनुष्य चाहता है कि उसे दुःख कभी न मिले। सुख-ही-सुख मिलता रहे। परंतु यह सम्भव ही नहीं है। जीवनमें सुख-दुःख दोनों ही रहते हैं। वह सुख भोगेगा तो दुःख भी आवेगा ही—नहीं चाहनेपर भी दुःख तो आवेगा ही। सुखकी इच्छाका त्याग कर दें तो दुःख नहीं आवेगा। दुःखको दूर करनेका यह सरल उपाय है। मनुष्य शुभ कर्म करे और सुखकी इच्छाका त्याग कर दे तो दुःखी नहीं होगा। सुखका त्याग नहीं करना है, सुखकी इच्छाका त्याग करना है। प्रारब्धवश सुख आवे तो उपभोग करो, परंतु सुखकी इच्छा पतन करनेवाली है।

तो कर्म करनेमें मनुष्य सावधान रहे—अशुभ कर्म करे नहीं। फल भगवान्‌पर छोड़कर प्रसन्न हो जाय। चाहे वह अनुकूल हो या प्रतिकूल। करनेमें सावधान और होनेमें प्रसन्न—इस सिद्धान्तके अनुसार आचरण करे तो कल्याणमें कोई संदेह नहीं है।

***योगाचार्य और उनकी योगचर्या—***

# ज्ञानयोगी महाभागवत श्रीउद्धव

उद्धवजी भगवान्‌के सखा-भक्त थे। अक्रूरके साथ जब भगवान् व्रजसे मथुरा आ गये और कंसको मारकर सब यादवोंको सुखी बना दिया, तब भगवान्‌ने एकान्तमें अपने प्रिय सखा उद्धवको बुलाकर कहा—'उद्धव ! व्रजकी गोपाङ्गनाएँ मेरे वियोगमें व्याकुल होंगी, उन्हें जाकर तुम समझा आओ। उन्हें मेरा संदेश सुना आओ कि मैं तुमसे अलग नहीं, सदा तुम्हारे साथ ही हूँ।' उद्धवजी अपने स्वामीकी आज्ञा पाकर नन्द-व्रजमें गये। वहाँ चारों ओरसे इन्हें व्रजवासियोंने घेर लिया और लगे भाँति-भाँतिके प्रश्न करने, कोई आँसू बहाने लगा, कोई मुरली बजाते-बजाते रोने लगा, कोई भगवान्‌का कुशल-समाचार पूछने लगा। उद्धवजीने सबको यथायोग्य उत्तर दिया। सबको धैर्य बँधाया।

एकान्तमें जाकर उन्होंने गोपियोंको अपना ज्ञान-संदेश सुनाया। उन्होंने कहा—'भगवान् वासुदेव किसी एक जगह नहीं हैं, वे तो सर्वत्र व्यापक हैं। उनमें भगवद्बुद्धि करो, सर्वत्र उन्हें देखो।' गोपियोंने रोते-रोते कहा—'उद्धवजी ! तुम ठीक कहते हो, किंतु हम गँवारी वनचरी इस गूढ़ ज्ञानको भला कैसे समझ सकती हैं। हम तो उन श्यामसुन्दरकी भोली-भाली सूरतपर ही अनुरक्त हैं। उनका वह हास्यसे युक्त मुखारविन्द, वह काली-काली घुँघराली अलकावली, वह वंशीकी मधुर ध्वनि हमें हठात् अपनी ओर खींच रही है। वृन्दावनकी समस्त भूमिपर उनकी अनन्त स्मृतियाँ अङ्कित हैं। तिलभर भी जमीन खाली नहीं, जहाँ उनकी कोई मधुर स्मृति न हो। हम इन यमुना-पुलिन, वन, पर्वत, वृक्ष और लताओंमें उन श्यामसुन्दरको देखती हैं। इन्हें देखकर उनकी स्मृति मूर्तिमान् होकर हमारे हृदय-पटलपर नाचने लगती है।

उनके ऐसे अलौकिक प्रेमको देखकर उद्धवजी अपना समस्त ज्ञान भूल गये और अत्यन्त करुणाके स्वरमें कहने लगे—

**वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।**
**यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम्॥**

(श्रीमद्भा० १०।४७।६३)

'मैं इन व्रजाङ्गनाओंकी चरणधूलिकी भक्तिभावसे वन्दना करता हूँ, जिनके द्वारा गायी हुई हरि-कथा तीनों भुवनोंको पावन करनेवाली है। व्रजमें जाकर उद्धवजी ऐसे प्रभावित हुए कि वे सब ज्ञान-गाथा भूल गये।'

भगवान्‌के द्वारका पधारनेपर ये भी उनके साथ गये। यदुवंशियोंके मन्त्रिमण्डलमें इनका भी एक प्रधान स्थान था।

इनकी भगवान्में अनन्य भक्ति थी। जब इन्होंने समझा कि भगवान् अब इस लोककी लीलाका संवरण करना चाहते हैं, तब वे एकान्तमें जाकर बड़ी दीनताके साथ कहने लगे—

**नाहं तवाङ्घ्रिकमलं क्षणार्धमपि केशव।**
**त्यक्तुं समुत्सहे नाथ स्वधाम नय मामपि॥**

(श्रीमद्भा० ११।६।४३)

'हे भगवन्! हे नाथ! मैं आपके चरणोंसे एक क्षणके लिये भी अलग होना नहीं चाहता। मुझे भी आप अपने साथ ले चलिये।'

भगवान्ने कहा—'उद्धव! मैं इस लोकसे इस शरीर-द्वारा अन्तर्हित होना चाहता हूँ। मेरे अन्तर्हित होते ही यहाँ घोर कलियुग आ जायगा। इसलिये तुम बदरिकाश्रमको चले जाओ और वहाँ तपस्या करो। तुम्हें कलियुगका धर्म नहीं व्यापेगा।'

भगवान्की ऐसी ही इच्छा है, यह समझकर उद्धवजी चले तो गये, किंतु उनका मन भगवान्की लीलाओंमें ही लगा रहा। वे बदरीवन न जाकर इधर-उधर घूमते रहे। जब सब यादव प्रभास-क्षेत्रको चले गये तो भगवान्की अन्तिम लीलाको देखने विदुरजी भी प्रभासमें पहुँचे। तबतक समस्त यदुवंशियोंका संहार हो चुका था, विदुरजी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते भगवान्के पास पहुँचे। भगवान् सरस्वती नदीके तटपर एक अश्वत्थके नीचे विराजमान थे, विदुरजीने रोते-रोते उन्हें प्रणाम किया। दैवयोगसे पराशरके शिष्य मैत्रेयजी भी वहाँ आ गये। दोनोंको भगवान्ने इस समस्त जगत्की सृष्टि, स्थिति, प्रलयका ज्ञान कराया और इस अन्तिम ज्ञानको विदुरजीके प्रति उपदेश करनेके लिये भी भगवान् आज्ञा कर गये।

भगवान्की आज्ञा पाकर उद्धवजी बदरिकाश्रमको चले। भगवान् अपने परमधामको पधारे। उद्धवजीके हृदयमें भगवान्का वियोग भर रहा था, अतः उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। दैवयोगसे उद्धवजीको महामति विदुरजी मिल गये। विदुरजीने पूछा—'यदुवंशके सब लोग कुशलपूर्वक तो हैं?' यदुकुलका नाम सुनते ही उद्धवजी ढाह बाँधकर रो पड़े और रोते-रोते बोले—

'कृष्णरूपी सूर्यके अस्त होनेपर, कालरूपी सर्पके ग्रसे जानेपर हे विदुरजी! हमारे कुलकी अब कुशल क्या पूछते हो? यह पृथ्वी हतभागिनी है और उनमें भी ये यदुवंशी सबसे अधिक भाग्यहीन हैं, जो दिन-रात पासमें रहनेपर भी भगवान्को नहीं पहचान सके, जैसे समुद्रमें रहनेवाले जीव चन्द्रमाको नहीं पहचान सकते।'

इसके बाद उद्धवजीने यदुवंशके क्षयकी सब बातें सुनायीं।

उद्धवजी परम भागवत थे, ये भगवान्के अभिन्नविग्रह थे। इनके सम्बन्धमें भगवान्ने स्पष्ट कहा है—

**अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं मदाश्रयम्।**
**अर्हत्युद्धव एवाद्धा सम्प्रत्यात्मवतां वरः॥**
**नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः।**
**अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु॥**

(श्रीमद्भा० ३।४।३०-३१)

'मेरे इस लोकसे चले जानेके पश्चात् उद्धव मेरे ज्ञानकी रक्षा करेंगे। उद्धव मुझसे गुणोंमें तनिक भी कम नहीं हैं, अतः ये ही सबको इसका उपदेश करेंगे।'

# मेरी चित्तवृत्ति भगवान्में ही रमण करती है

**मेरी चित्तवृत्ति नित्य भगवान्को स्वीकार और भगवान्में ही रमण करती है। भगवान्के अस्वीकारकी तो कल्पना ही वृत्तिमें नहीं रही है। इससे मेरा जीवन भगवान्के साथ ओतप्रोत हो गया है। भगवान् ही सर्वतोभावसे उसके चालक, पालक तथा मालिक बन गये हैं और उसके द्वारा वे अपना अभिलषित कार्य कर रहे हैं। भगवान्के काममें अब यह बाधक तो है ही नहीं, उनका यन्त्र बन गया है और अब इसमें सर्वत्र सदा उन्हींकी अभिव्यक्ति है तथा उन्हींका सुर बजता है; क्योंकि मेरी चित्तवृत्ति नित्य भगवान्को स्वीकार तथा भगवान्में ही रमण करती है।**

# गोरक्षासे जीवन सार्थक

गौ हमारी माता है। भारतीय संस्कृतिके आधार-स्तम्भोंमें गौका सर्वोपरि स्थान है। शास्त्रोंमें कहा गया है कि गायमें सम्पूर्ण देवताओंका निवास है। गायके गोमूत्रमें गङ्गा एवं गोबरमें लक्ष्मीका निवास माना जाता है। पर यह भारत-जैसे अध्यात्म-प्रधान देशके लिये कलंककी बात है कि यहाँकी इस पवित्र धरापर प्रतिदिन लगभग २९,५९० गाय-बैल काटे जाते हैं। इनकी रक्षा कैसे की जाय ? यह देशके सपूतोंके लिये चुनौती है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीने कहा है कि **'हिन्दूकी पहचान गायको बचानेकी लगन और तत्परतासे होनेवाली है। गाय दूध ही नहीं देती, बल्कि सारी खेतीका आधार-स्तम्भ है।'** गाँधीजीकी यह मान्यता थी कि गोरक्षा ही राष्ट्र-रक्षाका आधार है। भारतमें रहनेवालोंको गोरक्षाका संकल्प अवश्य लेना चाहिये।

## पूर्ण गोहत्या-बंदीसे सम्भावित लाभ

स्वतन्त्र भारतके ४४ वर्षोंमें जितना गोधन कटा, उतना
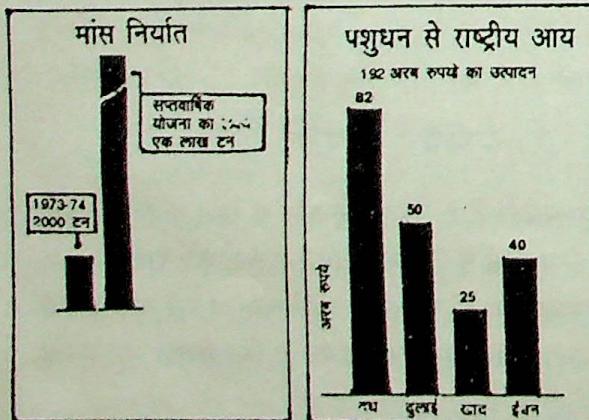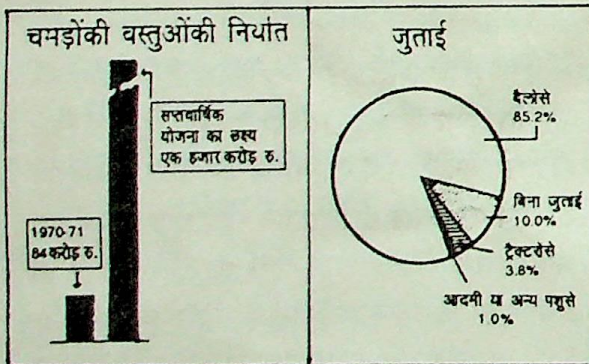
अंग्रेजों और मुगलशासकोंके कालमें भी नहीं कटा। पूर्व कृषि एवं विकास-मन्त्रीके अनुसार **'भारतमें २,८०० कतलखाने हैं और उनमें प्रतिवर्ष ५० लाख गायें कटती हैं।'** बृहद् बम्बई नगरपालिकाद्वारा संचालित देवनार-कतलखानेमें प्रतिवर्ष १८० करोड़ रुपये मूल्यका पशुधन काटा जाता है। विशेषज्ञोंका मानना है कि यदि **'वह कटना बंद हो जाय तो लगभग ३ लाख ७० हजार टन अनाज, १० लाख टन चारा, ३० लाख टन खाद, २० करोड़ ५८ लाख ५७ हजार टन दूध और ९ लाख ८० हजार लोगोंको रोजगार मिल सकता है।'** देशके सारे कतलखाने बंद कर दिये जायँ तो गरीबीकी रेखासे नीचे रहनेवाले लोगोंको खुशहाल बनाया जा सकता है।

## गोवधसे बची गायोंका विकासमें योगदान

सर्वोदय-समाजके एक अध्ययनके अनुसार पिछले २० वर्षोंमें गोमांस और चमड़ेका निर्यात पचास गुना बढ़ा है। इसी कारण जुताई और पशुधनसे होनेवाली राष्ट्रिय आय घटी। इसलिये भी आवश्यक है कि गोवंश-हत्यापर पूर्ण प्रतिबन्ध लगे और गोपालनको बढ़ावा दिया जाय।

## गोशालासे जनहितमें सहयोग

जो काम सरकारको करना चाहिये था, वह नहीं कर रही है। इसलिये बूढ़ी, बीमार, अपंग गायोंको सँभालनेवाली गोशालाओंको चाहिये कि वे **'सम्पूर्ण गोवंशको बचानेका**

**संकल्प लें।'** यह प्रसन्नताकी बात है कि देशकी कुछ प्रमुख

गोशालाओंने इस ओर ध्यान दिया है। वाराणसीमें 'श्रीकाशी जीवदया-विस्तारिणी गोशाला एवं पशुशाला'ने इसका श्रीगणेश कर दिया है। सन् १९८६ से १९९० के बीच कलकत्ताके कतलखाने ले जाया जानेवाला लगभग ३५ हजार गोवंश बचाया गया, जिसे सुरक्षित रखनेमें क्षेत्रीय किसानोंका सहयोग मिला है। जिन्हें पालनेमें किसानोंने असमर्थता बतायी, वैसे १३ सौ गाय-बैल रामेश्वर गोशालामें हैं।

गोशालाने उनके रख-रखाव, चिकित्सा और सेवाकी ऐसी व्यवस्था की कि दिसम्बर ८६ से नवम्बर ९० के बीच गायोंसे २ लाख १५ हजार १२० लीटर दूध मिला। बैलोंने ३५ बीघा भूमि उपजाऊ बनायी और सैकड़ों मन गेहूँ, चावल, जौ, मटर, बाजराकी खेतीमें मदद की। गोबर-गोमूत्रसे खाद और गैसकी आपूर्ति हुई। अब ८० हार्स पावर तक विद्युत् पैदा होनेकी सम्भावना स्पष्ट हो गयी है। दूध, खेती, ईंधन, ऊर्जा, उद्योग, परिवहन एवं श्रम-दिवस बढ़ानेमें इस गोवंशसे जितना लाभ हुआ है, उतना ही क्षेत्रीय विकास हुआ है। **'गोवंश-हत्या-बंदी सत्याग्रह करनेवालोंकी दृष्टिसे यह प्रत्यक्ष विधायक कार्य है, जो श्वेत क्रान्ति एवं हरित क्रान्तिको भारतीय परिवेशमें यथार्थ आयाम दे रहा है। खाड़ी-संकटके कारण पेट्रोलियम पदार्थोंकी कमीका विकल्प गोवंश ही है।'**

गोवंश-रक्षा-अभियानके अन्तर्गत बड़ी संख्यामें गायोंके संरक्षणका संकल्प आपको तत्काल लेना चाहिये। यदि आपके पास गाय रखनेका स्थान नहीं है तो आप अपनी गाय गोसदनोंमें, गोशालाओंमें रखकर पालिये। अपने नगरों तथा गाँवोंमें यदि पूर्वजोंद्वारा संस्थापित गोशालाएँ हैं तो उनकी सार-सँभाल सामूहिकरूपसे समितियाँ बनाकर करनी चाहिये। यदि कोई गोशाला आपके नगरमें पहलेसे नहीं है तो सब लोगोंको मिलकर नये गोसदनोंकी स्थापना करनी चाहिये और वहाँकी सार-सँभाल और व्यवस्था इस प्रकार करनी चाहिये कि उन गोसदनोंमें अधिकतम गोवंशका संरक्षण किया जा सके तथा दूधका उत्पादन भी बढ़े, जिससे देशके नागरिकोंको पर्याप्त दूध प्राप्त हो सके।

यह प्रसन्नताकी बात है, देशके कुछ प्रमुख गोसदनों—जैसे काशी, वृन्दावन और राजस्थानकी गोशालाओंने इस ओर तत्परतापूर्वक कार्य प्रारम्भ किया है। काशी-गोशालाकी रामेश्वर-शाखाने तो एक लाख गायोंको बचानेका संकल्प लेनेकी घोषणा की है। देशके अन्य भागोंमें भी इसी प्रकार उत्साहपूर्वक गोरक्षाके लिये सामूहिकरूपसे संकल्प लिये जायँ और तन-मन-धनसे इस कार्यकी सफलतामें जुट जाया जाय तो इससे गोरक्षा और गोसंवर्धनका बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न हो सकेगा। भारतीय संविधान, संस्कृति एवं हिन्दुत्वका तकाजा है कि भारतवासी स्वयं एक गाय पालें और पड़ोसके कम-से-कम १० लोगोंको गाय पालनेके लिये प्रेरित करें। किसी कारणवश यदि ऐसा सम्भव न हो तो गोसदन और गोशालाओंमें गायें प्रदान करें, अपने घरमें गोग्रास निकालें, अपने व्यापारिक प्रतिष्ठानोंमें गोशालाओंके धर्मार्थ कटौती काटें, गोलक रखें तथा अपनी आमदनीका कुछ अंश गायोंकी रक्षाके लिये गोशालाओंको दानके रूपमें दें, जिससे गायको खुराक मिलती रहे और गायें पलती रहें। जो सज्जन अथवा गोशालाएँ यह कार्य करना चाहती हों और उनके पास साधनकी कमी हो तो उन्हें उत्साहपूर्वक कार्य करनेवाली प्रमुख गोशालाओं (काशी-गोशालाकी शाखा रामेश्वर-गोशाला आदि)-से सम्पर्क करना चाहिये तथा अपने गोसदनोंको स्वावलम्बी बनानेके लिये अपनी कार्य-योजनामें मार्गदर्शन और सहायता प्राप्त करनी चाहिये।

गाय बचेगी—देश बचेगा।

---
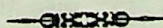
**पृथ्वीके रहते हुए बिछौनेके लिये प्रयास करनेकी क्या आवश्यकता है? अपनी भुजाओंके रहते तकियेकी क्या आवश्यकता है? अञ्जलीके रहते हुए तरह-तरहके भोजनपात्रोंसे क्या लेना है? तथा वल्कलादिके रहते वस्त्रोंकी क्या आवश्यकता है? क्या मार्गोंमें चिथड़े नहीं हैं? दूसरोंका पालन करनेवाले वृक्षोंने क्या भिक्षा देनी छोड़ दी है? क्या नदियाँ भी सूख गयीं? गुहाएँ क्या रुक गयी हैं? क्या भगवान् अपने शरणागतोंकी रक्षा नहीं करते? फिर तत्त्वज्ञ जन धनके घमंडमें अंधे हुए पुरुषोंका आश्रय क्यों लेते हैं?**—श्रीमद्भागवत
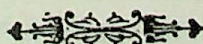
# महापापसे बचो

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

**ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः ।**
**महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥**

(मनुस्मृति ११ । ५४)

'ब्राह्मणकी हत्या करना, मदिरा पीना, स्वर्ण आदिकी चोरी करना और गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करना—ये चार महापाप हैं। इन चारोंमेंसे किसी भी महापापको करनेवालेके साथ कोई तीन वर्षतक रहता है, उसको भी वही फल मिलता है, जो महापापीको मिलता है[1]।'

## १. ब्रह्महत्या

चारों वर्णोंका गुरु ब्राह्मण है—'**वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः**'; शास्त्रीय ज्ञानका जितना प्रकाश ब्राह्मण-जातिसे हुआ है, उतना और किसी जातिसे नहीं हुआ है। अतः ब्राह्मणकी हत्या करना महापाप है। इसी तरह जिससे दुनियाका हित होता है, ऐसे हितकारी पुरुषोंको, भगवद्भक्तको तथा गाय आदिको मारना भी महापाप ही है। कारण कि जिसके द्वारा दूसरोंका जितना अधिक हित होता है, उसकी हत्यासे उतना ही अधिक पाप लगता है।

## २. मदिरापान

मांस, अंडा, सुल्फा, भाँग आदि सभी अशुद्ध और नशा करनेवाले पदार्थोंका सेवन करना पाप है; परंतु मदिरा पीना महापाप है। कारण कि मनुष्यके भीतर जो धार्मिक भावनाएँ रहती हैं; धर्मकी रुचि, संस्कार रहते हैं, उनको मदिरापान नष्ट कर देता है। इससे मनुष्य महान् पतनकी तरफ चला जाता है।

मदिराके निर्माणमें असंख्य जीवोंकी हत्या होती है। गङ्गाजी सबको शुद्ध करनेवाली हैं; परंतु यदि गङ्गाजीमें मदिराका पात्र डाल दिया जाय तो वह शुद्ध नहीं होता। जब मदिराका पात्र भी (जिसमें मदिरा डाली जाती है) इतना अशुद्ध हो जाता है, तब मदिरा पीनेवाला कितना अशुद्ध हो जाता होगा—इसका कोई ठिकाना नहीं है। मुसलमानोंके धर्मकी यह बात मैंने सुनी है कि शरीरके जिस अङ्गमें मदिरा लग जाय, उस अङ्गकी चमड़ी काटकर फेंक देनी चाहिये।

**प्रश्न**—आजकल कई अंग्रेजी दवाइयोंमें मदिरा मिली रहती है। अगर स्वास्थ्यके लिये ओषधिरूपसे उनका सेवन किया जाय तो क्या महापाप लगेगा ?

**उत्तर**—जिनमें मदिरा है, उन ओषधियोंके सेवनसे महापाप लगेगा ही।

**प्रश्न**—अगर परिवारमें एक व्यक्ति मदिरापान करता है तो उसके संगके कारण पूरे परिवारको महापाप लगेगा क्या ?

**उत्तर**—नहीं। परिवारवालोंकी दृष्टिमें वह कुटुम्बी है; अतः वे मदिरा पीनेवालेका संग नहीं करते, प्रत्युत परवशतासे कुटुम्बीका संग करते हैं। ऐसे ही अगर पति मदिरा पीता हो और स्त्रीको रात-दिन उसके साथ रहना पड़ता है तो स्त्रीको महापाप नहीं लगेगा; क्योंकि वह मदिरा पीनेवालेका संग नहीं करती, प्रत्युत परवशतासे पतिका संग करती है। रुचिपूर्वक संग करनेसे ही कुसंगका दोष लगता है।

## ३. चोरी

किसी भी चीजकी चोरी करना पाप है; परंतु सोना, हीरा आदि बहुमूल्य चीजोंकी चोरी करना महापाप है। तात्पर्य है कि जो वस्तु जितनी अधिक मूल्यवान् होती है, उसकी चोरी करनेपर उतना ही अधिक पाप लगता है।

## ४. गुरुपत्नीगमन

वीर्य (ब्रह्मचर्य)-नाशके जितने उपाय हैं, वे सभी पाप हैं[2]; परंतु गुरुपत्नीगमन करना महापाप है। कारण कि हमें विद्या देनेवाले, हमारे जीवनको निर्मल बनानेवाले गुरुकी पत्नी माँसे भी बढ़कर होती है। अतः उसके साथ व्यभिचार करना महापाप है।

---

१- स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबꣳश्च गुरोस्तल्पमावसन्ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरꣳस्तैरिति ॥ (छान्दोग्य० ५ । १० । ९)

२- वीर्यकी एक बूँदमें हजारों जीव होते हैं। स्त्री-संगसे जो वीर्य नष्ट होता है, उसमेंसे जो जीव गर्भाशयमें रजके साथ चिपक जाता है, वही गर्भ बनता है। शेष सब जीव मर जाते हैं, जिनकी हिंसाका पाप लगता है। हाँ, केवल संतानोत्पत्तिके उद्देश्यसे ऋतुकालमें स्त्री-संग करनेसे पाप नहीं लगता (पाप होता तो है, पर लगता नहीं); क्योंकि यह शास्त्रकी, धर्मकी आज्ञाके अनुसार है—'स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥'

परस्त्रीगमन करना भी महापाप है, इसलिये इसको व्यभिचार अर्थात् विशेष अभिचार (हिंसा) कहा गया है। अगर पुरुष परस्त्रीगमन करता है अथवा स्त्री परपुरुषगमन करती है तो माँ-बाप, भाई-बहन आदिको तथा ससुरालमें पति, सास-ससुर, देवर आदिको महान् दुःख होता है। इस प्रकार दो परिवारोंको दुःख देना पाप है और निषिद्ध भोग भोगकर शास्त्र, धर्म, समाज, कुल आदिकी मर्यादाका नाश करना भी पाप है। ये दोनों पाप एक साथ बननेसे परस्त्रीगमन अथवा परपुरुषगमन करना विशेष अभिचार है, महापाप है। एक बुद्धिमान् सज्जनने अपना अनुभव बताया था कि परस्त्रीगमन करनेसे हृदयका आस्तिकभाव नष्ट हो जाता है और नास्तिकभाव आ जाता है, जो कि महान् अनर्थका मूल है।

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि कोई भी क्यों न हो, सभीको ऐसे महापापोंका त्याग करना चाहिये। मनुष्य-शरीर मिला है तो कम-से-कम महापापोंसे तो बचना ही चाहिये; जिससे आगे दुर्गति न हो, भूत-प्रेत आदि योनियोंकी प्राप्ति न हो।

## गर्भपात महापापसे दुगुना पाप है

जैसे ब्रह्महत्या महापाप है, ऐसे ही गर्भपात भी महापाप है। शास्त्रमें तो गर्भपातको ब्रह्महत्यासे भी दुगुना पाप बताया गया है—

**यत्पापं ब्रह्महत्याया द्विगुणं गर्भपातने।**
**प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते॥**

(पाराशरस्मृति ४। २०)

'ब्रह्महत्यासे जो पाप लगता है, उससे दुगुना पाप गर्भपात करनेसे लगता है। इस गर्भपातरूपी महापापका कोई प्रायश्चित्त नहीं है, इसमें तो उस स्त्रीका त्याग कर देनेका ही विधान है।'

भगवान् विशेष कृपा करके जीवको मनुष्य-शरीर देते हैं, पर नसबंदी, ऑपरेशन, गर्भपात, लूप, गर्भनिरोधक दवाओं आदिके द्वारा उस जीवको मनुष्य-शरीरमें न आने देना, उस परवश जीवको जन्म ही न लेने देना, जन्मसे पहले ही उसको नष्ट कर देना बड़ा भारी पाप है। उसने कोई अपराध भी नहीं किया, फिर भी उस निर्बल जीवकी हत्या कर देना उसके साथ कितना बड़ा अन्याय है। वह जीव मनुष्य-शरीरमें आकर न जाने क्या-क्या अच्छे काम करता, समाजकी सेवा करता, अपना उद्धार करता, पर जन्म लेनेसे पहले ही उसकी हत्या कर देना घोर अन्याय है, बड़ा भारी पाप है। अपना उद्धार, कल्याण न करना भी दोष, पाप है, फिर दूसरोंको भी उद्धारका मौका प्राप्त न होने देना कितना बड़ा पाप है! ऐसा महापाप करनेवाले स्त्री-पुरुषके अगले जन्मोंमें कोई संतान नहीं होगी। वे संतानके बिना जन्म-जन्मान्तरतक रोते रहेंगे।

यह प्रत्यक्ष बात है कि जो मालिक अच्छे नौकरोंका तिरस्कार करता है, उसको फिर अच्छे नौकर नहीं मिलेंगे; और जो नौकर अच्छे मालिकका तिरस्कार करता है, उसको फिर अच्छा मालिक नहीं मिलेगा। अच्छे संत-महात्माओंका संग पाकर जो अपना उद्धार नहीं करता, उसको फिर वैसा संग नहीं मिलेगा। जिनसे लाभ हुआ है, ऐसे अच्छे संतोंका जो त्याग करता है, उनकी निन्दा, तिरस्कार करता है, उसको फिर वैसे संत नहीं मिलेंगे। जैसे माता-पिता प्रसन्न होकर बालकको मिठाई देते हैं, पर बालक उस मिठाईको न खाकर गंदी नालीमें फेंक देता है तो फिर माता-पिता उसको मिठाई नहीं देते। ऐसे ही भगवान् विशेष कृपा करके मनुष्य-शरीर देते हैं, पर मनुष्य उस शरीरसे पाप करता है, उस शरीरका दुरुपयोग करता है तो फिर उसको मनुष्य-शरीर नहीं मिलेगा। माता-पिता तो फिर भी बालकको मिठाई दे देते हैं; क्योंकि बालक नासमझ होता है, पर जो समझपूर्वक, जानकर पाप करता है, उसको भगवान् फिर मनुष्य-शरीर नहीं देंगे। इसी तरह जो गर्भपात करते हैं, उनकी फिर अगले जन्मोंमें संतान नहीं होगी।

ब्रह्मवैवर्तपुराण (प्रकृतिखण्ड, अध्याय २)में आता है कि सृष्टिके आरम्भमें भगवान् श्रीकृष्णकी चिन्मयी शक्ति मूल प्रकृति (श्रीराधा)ने अपने गर्भको ब्रह्माण्ड-गोलकके अथाह जलमें फेंक दिया। यह देखकर भगवान्ने उसको शाप दे दिया कि 'आजसे तेरी कोई संतान नहीं होगी। इतना ही नहीं, तेरे

(गीता १८। ४७); 'धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि' (गीता ७। ११)। परंतु केवल भोगेच्छासे स्त्रीका संग करनेसे उस हिंसाका पाप लगता ही है। इसलिये कहा है—

एक बार भग भोग ते, जीव हतै नौ लाख। मन मनोर नारी तजी, सुन गोरख की साख॥

अंशसे जो-जो दिव्य स्त्रियाँ उत्पन्न होंगी, उनकी भी कोई संतान नहीं होगी।[१] इसके बाद मूल प्रकृति-देवीकी जीभके अग्रभागसे सरस्वती प्रकट हुई। फिर कुछ समय बीतनेपर वह मूल प्रकृति दो रूपोंमें प्रकट हो गयी। आधे बायें अङ्गसे वह 'लक्ष्मी' और आधे दायें अङ्गसे वह 'राधा' हो गयी। भगवान् श्रीकृष्ण भी उस समय दो रूपोंमें प्रकट हो गये। आधे बायें अङ्गसे वे 'चतुर्भुज विष्णु' और आधे दायें अङ्गसे वे 'द्विभुज कृष्ण' हो गये[२]। तब भगवान् श्रीकृष्णने लक्ष्मी और सरस्वती—दोनों देवियोंको विष्णुकी सेवामें उपस्थित होनेकी आज्ञा दी। मूल प्रकृतिसे प्रकट होनेके कारण लक्ष्मी और सरस्वतीकी भी कोई संतान नहीं हुई[३]। इसके बाद भगवान् श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे असंख्य गोप प्रकट हुए और श्रीराधाके रोमकूपोंसे असंख्य गोप-कन्याएँ प्रकट हुईं। भगवान्‌के शापके कारण इन गोपकन्याओंकी भी कोई संतान नहीं हुई[४]। इस कथासे यह सिद्ध होता है कि जो स्त्री गर्भ गिराती है, वह अगले जन्मोंमें संतानका सुख नहीं देख सकेगी!

**प्रश्न**—ऐसा देखनेमें आता है कि जिन्होंने गर्भपात किया है, वे स्त्रियाँ भी पुनः गर्भवती होती हैं और उनकी संतान भी होती है। अतः यह कैसे मानें कि गर्भपात करनेवालेकी फिर संतान नहीं होगी?

**उत्तर**—इस जन्मका तो पहले ही प्रारब्ध बन चुका है; अतः उस प्रारब्धके अनुसार उनकी संतान हो सकती है। परंतु अगले जन्ममें (नया प्रारब्ध बननेपर) उनकी संतान नहीं होगी। इस जन्ममें किये गये गर्भपातरूप महापापका फल उनको अगले जन्मोंमें भोगना ही पड़ेगा।

**प्रश्न**—गर्भस्राव, गर्भपात और भ्रूणहत्या—इन तीनोंमें क्या अन्तर है?

**उत्तर**—गर्भमें जीवका शरीर बनना शुरू होनेसे पहले ही रज-वीर्य गिर जाय तो उसको 'गर्भस्राव' कहते हैं। जब गर्भमें शरीर बनना शुरू हो जाय, तब उसको गिरा देना, 'गर्भपात' कहलाता है। जब गर्भमें स्थित जीवके हाथ, पाँव, मस्तक आदि अङ्ग निकल आते हैं और यह बच्चा है या बच्ची—इसका भेद स्पष्ट होने लगता है, तब उसको गिरा देना 'भ्रूण-हत्या' कहलाती है। गर्भस्राव, गर्भपात और भ्रूण-हत्या—इन तीनोंको किसी भी तरहसे करनेपर महापाप लगता है। हाँ, अपने-आप गर्भ गिर जाय तो उसका पाप नहीं लगता। जैसे, संसारमें बहुत-से जीव अपने-आप मर जाते हैं, पर उसका पाप हमें नहीं लगता; क्योंकि हमने उनको मारा भी नहीं और मारनेकी इच्छा भी नहीं की।

**प्रश्न**—गर्भमें जीव (प्राण) तो रहता नहीं, बादमें आता है, फिर गर्भपात पाप कैसे?

**उत्तर**—पुरुषके वीर्यकी एक बूँदमें हजारों जीव होते हैं। उनमेंसे जो जीव रजके साथ चिपक जाता है, गर्भाशयमें रह जाता है, वही बढ़कर गर्भ बनता है। जीवके बिना न तो वीर्य रजके साथ चिपक सकता है और न गर्भ बढ़ ही सकता है। प्राणशक्तिके बिना गर्भ बढ़ ही नहीं सकता। जीवमें प्राणशक्ति पहले सूक्ष्म होती है, पर गर्भमें आते ही प्राणशक्ति स्थूल हो जाती है और गर्भ बढ़ने लगता है। गर्भ बढ़नेपर जब प्राणशक्ति विशेषतासे प्रतीत होती है और गर्भमें हलचल होने लगती है, तब लोग कह देते हैं कि अब गर्भमें जीव आ गया।

---

१- दृष्ट्वा डिम्बञ्च सा देवी हृदयेन विभूषिता। उत्ससर्ज च कोपेन ब्रह्माण्डं गोलके जले॥
दृष्ट्वा कृष्णश्च तत्त्यागं हाहाकारं चकार ह। शशाप देवीं देवेशस्तत्क्षणं च यथोचितम्॥
यतोऽपत्यं त्वया त्यक्तं कोपशीले सुनिष्ठुरे। भव त्वमनपत्यापि चाद्यप्रभृति निश्चितम्॥
या यास्त्वदंशरूपा च भविष्यन्ति सुरस्त्रियः। अनपत्याश्च ताः सर्वास्तत्समा नित्ययौवनाः॥
(प्रकृति० २। ५०—५३)

२- अथ कालान्तरे सा च द्विधारूपा बभूव ह। वामार्द्धाङ्गा च कमला दक्षिणार्द्धा च राधिका॥
एतस्मिन्नन्तरे कृष्णो द्विधारूपो बभूव ह। दक्षिणार्द्धश्च द्विभुजो वामार्द्धश्च चतुर्भुजः॥
(प्रकृति० २। ५६-५७)

३- अनपत्ये च ते द्वे च यतो राधांशसम्भवाः। (प्रकृति० २। ६०)

४- राधाङ्गलोमकूपेभ्यो बभूवुर्गोपकन्यकाः। राधातुल्याश्च सर्वास्ताः राधातुल्याः प्रियंवदाः॥
रत्नभूषणभूषाढ्याः शश्वत् सुस्थिरयौवनाः। अनपत्याश्च ताः सर्वाः पुंसः शापेन सन्ततम्॥ (प्रकृति० २। ६४-६५)

**प्रश्न**—किसीका गर्भ अपने-आप गिर जाय तो ?

**उत्तर**—यह एक रोग है और इसका इलाज करना चाहिये। एक स्त्रीके पाँच-छः गर्भ गिर गये। एक संतने उसके परिवारवालोंको बताया कि उसके गर्भाशयमें गरमी बहुत है, जिससे गर्भ झुलस जाता है और गिर जाता है; अतः इसके लिये एक उपाय करो। जब उसके गर्भ रह जाय, तब वह इस विधिसे गायका दूध पिये। एक बर्तनपर दूध छाननेवाला कपड़ा डाल दें और कपड़ेपर महीन पिसी मिश्री रख दें। फिर उसपर गायका दूध दुहें, जिससे वह मिश्री दूधमें मिलकर बर्तनमें चली जायगी। यह धारोष्ण दूध वह स्त्री तत्काल गायके सामने ही बैठकर प्रतिदिन प्रातः खाली पेट एक महीनेतक पिये। संतके कहे अनुसार उस स्त्रीने दूध पिया तो उसका गर्भ गिरा नहीं और उसकी संतान हो गयी। वह संतान अब भी जीवित है।

इस रोगको मिटानेकी कई ओषधियाँ हैं, जिनको आयुर्वेदमें निष्णात अनुभवी वैद्यसे लेना चाहिये।

**प्रश्न**—किसी रोगके कारण गर्भपात कराना अनिवार्य हो जाय तो क्या करें ?

**उत्तर**—गर्भपातका पाप तो लगेगा ही। स्त्रीके बचावके लिये लोग गर्भपात करा देते हैं, पर ऐसा नहीं करना चाहिये, प्रत्युत इलाज करना चाहिये। जो होनेवाला है, वह तो होगा ही। स्त्री मरनेवाली होगी तो गर्भ गिरानेपर भी वह मर जायगी। यदि उसकी आयु शेष होगी तो गर्भ न गिरानेपर भी वह नहीं मरेगी। मृत्यु तो समय आनेपर ही होती है, निमित्त चाहे कुछ भी बन जाय। अतः गर्भपात कभी नहीं कराना चाहिये।

**प्रश्न**—कुँवारी अवस्थामें गर्भ रह जाय तो उसको गिराना चाहिये या नहीं ?

**उत्तर**—जिसके संगसे गर्भ रह जाय, उसके साथ विवाह करा देना चाहिये। अगर विवाह न करा सकें तो भी उस गर्भको गिराना नहीं चाहिये। उसका पालन करना चाहिये और थोड़ा बड़ा होनेपर उस बच्चेको अनाथालयमें भरती करा देना चाहिये अथवा कोई गोद लेना चाहे तो उसको दे देना चाहिये।

यदि कोई कन्याके साथ जबर्दस्ती (बलात्कार) करे तो जबर्दस्ती करनेवालेको बड़ा भारी पाप लगेगा। यदि कन्याने उसमें (संगका) सुख लिया है तो उतने अंशमें उसको भी पाप लगेगा; क्योंकि सभी पाप भोगेच्छासे ही होते हैं। सर्वथा भोगेच्छा न होनेपर पाप नहीं लगता।

यदि कुँवारी कन्याके गर्भ रह जाय तो उसके माता-पिताको भी असावधानीके कारण उसका पाप लगता है। अतः माता-पिताको चाहिये कि वे शुरूसे ही बड़ी सावधानीके साथ अपनी कन्याकी सुरक्षा रखें, उसको स्वतन्त्रता न दें।

**प्रश्न**—लोगोंको पता लगेगा तो उस कन्याकी बदनामी होगी तथा उसके साथ कोई विवाह भी नहीं करेगा, तो फिर वह क्या करे ?

**उत्तर**—पाप किया है तो बदनामी सहनी ही पड़ेगी। गर्भ गिरा देना, आत्महत्या कर लेना और घरसे भाग जाना—इन तीन हत्याओं (पापों) से बचनेके लिये बदनामी सह लेना अच्छा है। उस कन्याके साथ कोई विवाह करना स्वीकार न करे तो वह घर बैठे ही भजन-स्मरण करे। इससे उसके पापका प्रायश्चित्त भी हो जायगा।

**प्रश्न**—नसबंदी, ऑपरेशन करवानेसे क्या हानि है ?

**उत्तर**—यह प्रत्यक्ष देखा जा सकता है कि जिन लोगोंने नसबंदी करवायी है, उनमेंसे बहुतोंके शरीर और हृदय कमजोर हो गये हैं। उनके शरीरमें कई रोग पैदा हुए हैं, हो रहे हैं और होते रहेंगे। पशुओंमें भी हम देखते हैं कि जो बछड़े बैल बना दिये जाते हैं, उनका पुरुषत्व नष्ट होनेसे उनके मांसमें वह शक्ति नहीं रहती, जो शक्ति बैल न बनाये हुए बछड़ोंके मांसमें रहती है। अतः बैल बनाये हुए बछड़ोंका मांस ईराक, ईरान आदि देशोंमें सस्ता बिकता है और बिना बैल बनाये हुए बछड़ोंका मांस महँगा बिकता है—ऐसा हमने सुना है। इसलिये नसबंदीके द्वारा पुरुषत्वका अवरोध करनेसे, नष्ट करनेसे शारीरिक शक्ति भी नष्ट होती है और उत्साह, निर्भयता आदि मानसिक शक्ति भी नष्ट होती है।

जो नसबंदीके द्वारा अपना पुरुषत्व नष्ट कर देते हैं, वे नपुंसक (हिंजड़े) हैं। उनके द्वारा पितरोंको पिण्ड-पानी नहीं मिलता* ऐसे पुरुषको देखना भी अशुभ माना गया है। यात्राके समय ऐसे व्यक्तिका दीखना अपशकुन है।

* अङ्गहीनाश्रोत्रियषण्ढशूद्रवर्जम्। (कात्यायनश्रौतसूत्र १।१।५)

जिन माताओंने नसबंदी, ऑपरेशन करवाया है, उनमेंसे बहुतोंको लाल एवं सफेद प्रदर हो गया है, जिसका कोई इलाज नहीं है। राजस्थानमें ही नसबंदी, ऑपरेशनके कारण अबतक सैकड़ों स्त्रियाँ मर चुकी हैं और कइयोंको ऐसे रोग हो गये हैं कि डॉक्टरोंने जवाब दे दिया है। यह बात समाचार-पत्रोंमें भी आयी है। ऑपरेशन करवानेसे स्त्रियोंके शरीरमें कमजोरी आ जाती है; उठते-बैठते समय आँखोंके आगे अँधेरा आ जाता है, छाती और पीठमें दर्द होने लगता है और काम करनेकी हिम्मत नहीं होती। ऐसा हमने डॉक्टरोंसे सुना है।

जो स्त्रियाँ नसबंदी, ऑपरेशन करा लेती हैं, उनका स्त्रीत्व अर्थात् गर्भ-धारण करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। ऐसी स्त्रियोंका दर्शन भी अशुभ है, अपशकुन है। भगवान्‌की दी हुई शक्तिका नाश करनेका किसीको भी अधिकार नहीं है। उसका नाश करना अनधिकार चेष्टा है, अपराध है। जिन्होंने ऑपरेशनके द्वारा अपना स्त्रीत्व नष्ट किया है, वे तो पापकी भागिनी हैं ही, पर जो दूसरोंको ऑपरेशन करवानेकी प्रेरणा करती हैं, आग्रह करती हैं, वे नया पाप करती हैं। जैसे गीताके अध्ययनका बड़ा माहात्म्य है, पर उससे भी अधिक गीताके प्रचारका माहात्म्य है (गीता १८। ६९), ऐसे ही जो दूसरोंमें ऑपरेशनका प्रचार करती हैं, वे बड़ा भारी पाप करती हैं और गोघातकोंकी संख्या बढ़ानेमें सहायक होनेसे गोहत्याके पापमें भागीदार होती हैं। भोली बहनोंको इस बातका पता नहीं है, इसलिये वे अनजानमें बड़ा भारी अपराध, पाप कर बैठती हैं। उन्हें इस पापसे बचना चाहिये।

जो कोई भी किसी प्रकारका अपराध करता है, उसकी प्राण-शक्तिका जल्दी नाश हो जाता है और उसकी मृत्यु जल्दी हो जाती है। अपराध, पाप करनेपर अथवा उसको करनेकी मनमें आनेपर श्वास तेजीसे चलने लगते हैं, प्राण क्षुब्ध हो जाता है—यह प्रत्यक्ष बात है। कोई भी अनुभव करके देख सकता है।

नसबंदी, ऑपरेशन कराना व्यभिचारको खुला अवसर देना है, जो बड़ा भारी पाप है। पशुओंकी बलि देने, वध करनेको 'अभिचार' कहते हैं। उससे भी जो विशेष अभिचार होता है, उसको 'व्यभिचार' कहते हैं। इससे मनुष्यकी धार्मिक, पारमार्थिक रुचि (भावना) नष्ट हो जाती है और उसका महान् पतन हो जाता है।

मनुष्य-शरीर केवल परमात्मप्राप्तिके लिये ही मिला है, पर उसको परमात्माकी तरफ न लगाकर केवल भोग भोगनेमें ही लगाना और इतना ही नहीं, केवल भोग भोगनेके लिये बड़े-बड़े पाप करना, गर्भपात करना, नसबंदी करना, ऑपरेशन करना कितने भारी अनर्थकी बात है! गर्भपात, नसबंदी आदि करनेसे सिवाय भोग भोगनेके और क्या सिद्ध होता है? नसबंदीसे क्या किसीको कोई धार्मिक-पारमार्थिक लाभ हुआ है, होगा और हो सकता है? नसबंदी करनेसे केवल भोगपरायणता ही बढ़ रही है। जितनी भोगपरायणता आज मनुष्योंमें हो रही है, उतनी पशुओंमें भी नहीं है। यदि आप संतान नहीं चाहते तो संयम रखो, जिससे आपके शरीरमें बल रहेगा, उत्साह रहेगा और आपमें धर्म-परायणता, ईश्वर-परायणता आयेगी। आपका मनुष्य-जन्म सफल हो जायगा। संतोंने कहा है—

**के शत्रवः सन्ति निजेन्द्रियाणि**
**तान्येव मित्राणि जितानि यानि॥**

(प्रश्नोत्तरी ४)

अर्थात् मनुष्य इन्द्रियोंके वशमें हो जाता है तो वे इन्द्रियाँ उसकी शत्रु बन जाती हैं, जिससे उसके लोक-परलोक बिगड़ जाते हैं। परंतु वह इन्द्रियोंको जीत लेता है तो वे इन्द्रियाँ उसकी मित्र बन जाती हैं, जिससे उसके लोक-परलोक सुधर जाते हैं। इसलिये गीताने कहा है—

**उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।**
**आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥**

(६। ५)

'अपने द्वारा अपना उद्धार करे, अपना पतन न करे, क्योंकि आप ही अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है।'

**प्रश्न**—गर्भपात करनेसे क्या हानि है?

**उत्तर**—गर्भपातसे तो हानि-ही-हानि है। कृत्रिम गर्भस्राव, गर्भपात करानेसे स्त्रीका शरीर खराब हो जाता है, कमजोर हो जाता है। जवानी अवस्थामें भले ही कमजोरीका पता न लगे, पर थोड़ी अवस्था ढलनेपर इसका पता लगने लगेगा। जबतक शरीरमें खून बनता है, तबतक कमजोरीका पूरा पता नहीं लगता, पर खून बनना कम होनेपर कमजोरीका

पता लगता ही है। गर्भपातसे बहुतोंको प्रदर हो जाता है। इसके सिवाय गर्भपातसे खून गिरनेका एक रास्ता खुल जाता है।

बच्चा पैदा होनेसे स्त्रीका शरीर खराब नहीं होता; क्योंकि बच्चा पैदा होना प्राकृत है और वह समयपर होता है। तात्पर्य है कि प्राकृत चीजोंसे स्वाभाविक ही खराबी पैदा नहीं होती, खराबी तो कृत्रिम चीजोंसे ही होती है।

**प्रश्न**—एक-दो बार संतान होनेसे स्त्री माँ बन ही गयी, अब वह नसबंदी, ऑपरेशन करवा ले तो क्या हर्ज है?

**उत्तर**—वह माँ तो पहले थी, अब तो नसबंदी ऑपरेशन करवा लेनेपर उसकी 'स्त्री' संज्ञा ही नहीं रही। कारण कि शुक्र-शोणित मिलकर जिसके उदरमें गर्भका रूप धारण करते हैं, उसका नाम स्त्री है* जो गर्भ धारण न कर सके, उसका नाम स्त्री नहीं है; और जो गर्भ-स्थापन न कर सके, उसका नाम पुरुष नहीं है। ऑपरेशनके द्वारा संतानोत्पत्ति करनेकी शक्ति नष्ट करनेपर पुरुषका नाम तो हिंजड़ा होगा, पर स्त्रीका क्या नाम होगा—इसका हमें पता नहीं।

परिवार-नियोजन नारी-जातिका घोर अपमान है; क्योंकि इससे नारी-जाति केवल भोग्या बनकर रह जाती है। कोई आदमी वेश्याके पास जाता है तो क्या वह संतान-प्राप्तिके लिये जाता है? अगर कोई आदमी स्त्रीसे संतान नहीं चाहता, प्रत्युत केवल भोग करता है तो उसने स्त्रीको वेश्या ही तो बनाया! यह क्या नारी-जातिका सम्मान है? नारी-जातिका सम्मान तो माँ बननेसे ही है, भोग्या बननेसे कभी नहीं। अगर स्त्री ऑपरेशन आदिके द्वारा अपनी मातृशक्तिको नष्ट कर देती है तो वह पैरकी जूतीकी तरह केवल भोग्य वस्तु रह जाती है। यह नारी-जातिका कितना बड़ा अपमान है, निरादर है!

**प्रश्न**—जिसकी स्वाभाविक ही संतान नहीं होती, उसको दोष लगता है या नहीं?

**उत्तर**—किसीकी स्वाभाविक ही संतान नहीं होती तो यह उसका दोष नहीं है। जो कृत्रिम उपायोंसे मातृशक्तिका, संतान उत्पन्न करनेकी शक्तिका नाश करती है, उसीको दोष-पाप लगता है।

**प्रश्न**—जो स्त्रियाँ गर्भाधानके पहले ही गोलियाँ खा लेती हैं, जिससे गर्भ रहे ही नहीं, उनको भी पाप लगता है क्या?

**उत्तर**—जीव मनुष्य-शरीरमें आकर परमात्माको प्राप्त कर सकता है; अपना और दूसरोंका भी उद्धार कर सकता है; परंतु अपनी भोगेच्छाके वशीभूत होकर उस जीवको ऐसा मौका न आने देना पाप है ही। गीतामें भी भगवान्‌ने कामना—भोगेच्छा, सुखेच्छाको ही सम्पूर्ण पापोंका हेतु बताया है (३। ३७)। यह भोगेच्छा ही सम्पूर्ण पापोंकी जड़ है। परिवार-नियोजनका मतलब केवल भोगेच्छा ही है। अतः गोलियाँ खाकर संतति-निरोध करना पाप ही है।

**प्रश्न**—यदि कोई स्त्री अपने पतिको बताये बिना गर्भपात करवा ले तो क्या करना चाहिये?

**उत्तर**—इसके लिये शास्त्रने आज्ञा दी है कि उस स्त्रीका सदाके लिये त्याग कर देना चाहिये—**'तस्यास्त्यागो विधीयते'** (पाराशरस्मृति ४। २०)।

गर्भपात करना महान् पाप है और पतिसे छिपाव करना अपराध है। छिपकर किये गये पापका दण्ड बहुत भयंकर होता है। अगर संतानकी इच्छा न हो तो संयम रखना चाहिये। संयम रखना पाप, अन्याय नहीं है, प्रत्युत बड़ा भारी पुण्य है, बड़ा त्याग है, बड़ी तपस्या है।

**प्रश्न**—वर्तमान सरकार गर्भपात, नसबंदी आदिको पाप नहीं मानती, प्रत्युत अच्छा कार्य मानती है, तो क्या ऐसा करनेवालोंको पाप नहीं लगेगा?

**उत्तर**—पाप तो लगेगा ही, मानो चाहे मत मानो। जितने भी पाप होते हैं, वे किसीके मानने और न माननेपर निर्भर नहीं करते। पापके विषयमें अर्थात् अमुक कार्य पाप है—इसमें वेद, शास्त्र और संत-वचन ही प्रमाण हैं।

पाप-कर्म करनेसे पाप लगता ही है और उसका फल भी भोगना पड़ता है। हमने देखा है कि जिस पशुकी बलि चढ़ती है, उसको पीछेकी टाँगोंसे जिस वृक्षमें लटका देते हैं, वह वृक्ष भी उस पापके कारण सूख जाता है। जो कसाई पैसे लेकर पशुओंको काटते हैं, उनके हाथ बादमें काम नहीं करते; अतः वे हाथमें छुरी बाँधकर पशुओंको काटनेका काम करते हैं। भेड़ियेके सात-सात बच्चे होते हैं और हिरनके एक-दो बच्चे ही होते हैं, फिर भी झुंड हिरनोंका ही होता है, भेड़ियोंका नहीं। तात्पर्य है कि हिंसा आदि पाप करनेवालोंकी परम्परा ज्यादा

* 'स्त्यै शब्दसंघातयोः'। स्त्यायतः—संगते भवतः अस्यां शुक्रशोणिते इति स्त्री। (सिद्धान्तकौमुदी, बालमनोरमा)

समय नहीं चलती।

एक संतसे किसीने पूछा—'जिन शास्त्रोंमें, सम्प्रदायोंमें बलि देनेकी, कुरबानी करनेकी आज्ञा दी गयी है, उस आज्ञाका पालन करनेवाले व्यक्तियोंको पाप नहीं लगता होगा; क्योंकि वे अपने ही शास्त्र, सम्प्रदायकी आज्ञाका पालन करते हैं।' उन्होंने उत्तर दिया—'जो बलि देते हैं, कुरबानी करते हैं, वे भी अगर छः महीने हृदयसे भगवान‍्के नामका जप करें तो फिर वे बलि दे ही नहीं सकते, कुरबानी कर ही नहीं सकते।

(क्रमशः)

# शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

*[ गत एक वर्ष पूर्व 'कल्याण'में इस स्तम्भके अन्तर्गत स्वास्थ्य-सम्बन्धी कुछ चर्चाएँ की गयी थीं। मनकी एकाग्रता और सात्त्विकताके लिये स्वस्थ रहना भी परम आवश्यक है। आजकल मानव-समाजमें आरोग्य-दर्शन देव-दर्शनकी तरह दुर्लभ हो गया है। सामान्यतः व्यक्ति प्रायः छोटी-मोटी बीमारियोंसे परेशान रहते हैं और इसके लिये उन्हें बार-बार चिकित्सकोंकी शरण लेनी पड़ती है। वास्तवमें खान-पान, आहार-विहार एवं रहन-सहनकी अनियमितता तथा असंयमके कारण ही रोग और व्याधियोंका प्रादुर्भाव होता है। संयमित और नियमित जीवनसे प्राणी रोगमुक्त हो जाता है। प्रकृतिके कुछ सरल और स्वाभाविक नियम हैं, जिनके अनुपालनका ध्यान रखनेपर व्यक्ति प्रायः अस्वस्थ नहीं होते। यदि किसी कारणवश कोई बीमारी हो जाती है तो बिना ओषधि-सेवन किये ही वे प्राकृतिक नियमोंके पालनसे स्वस्थ हो सकते हैं। साधक महानुभावोंको ऐसे नियमोंके पालन करनेमें सावधानी अवश्य बरतनी चाहिये। कारण, शरीर और मनसे स्वस्थ रहना साधनाकी पहली सीढ़ी है। प्रस्तुत स्तम्भमें स्वास्थ्य-सम्बन्धी कुछ नियमों तथा आजकलकी विभिन्न बीमारियोंकी चिकित्सा भी इन प्राकृतिक नियमोंके अनुसार प्रस्तुत होगी, जिससे पाठक लाभान्वित हो सकेंगे।—सम्पादक]*

## पाचन-तन्त्रके रोगोंकी उत्पत्ति एवं चिकित्सा

अनुसंधानोंके अन्धानुसरण एवं तथाकथित वैज्ञानिक अन्वेषणोंके अतिक्रमण, आक्रमण और दुरुपयोगके कारण आज सभ्य समाजमें शारीरिक तथा मानसिक भोग-विलासके प्रसाधनोंकी इतनी विपुलता हो गयी है कि सामान्य मानव मानसिक शान्ति और शारीरिक स्वास्थ्यसे दिनोंदिन विमुख एवं वञ्चित होता जा रहा है। जीवनकी अतिव्यस्तता, विलासिता या इन्द्रिय-लोलुपताके कारण मानसिक तनाव और तज्जनित शारीरिक अभाव (गलत रहन-सहनका कुप्रभाव) बढ़ता जा रहा है। आर्थिक अव्यवस्थाके साथ-साथ आविष्कारोंकी होड़ तथा आवश्यकताओंकी अनावश्यक वृद्धिके फलस्वरूप गृहस्थी एक भारी बोझ बनती जा रही है और सामाजिक जीवनकी भाँति स्वास्थ्यका महत्त्व नगण्य होता जा रहा है। मानव-जीवनके समस्त कार्योंका मूल्याङ्कन अब निर्जीव पदार्थोंके समान मुद्राओंमें होने लगा है। मानवके सहज स्वाभाविक गुण, प्रेम, सहानुभूति, सेवा आदि बड़े वेगसे नष्ट होते जा रहे हैं और उनके स्थानपर घृणा, भय, ईर्ष्या, राग-द्वेष आदि उतनी ही तेजीसे बढ़ते चले जा रहे हैं।

इसी स्थितिमें पाचन-तन्त्रके रोगोंकी उत्पत्ति होती है। गहराईसे विचार करनेपर विदित होगा कि अन्तर्मनमें व्याप्त भय, ईर्ष्या, घृणा, राग-द्वेषके भीतर ही समस्त रोगोंका बीज या अङ्कुर विद्यमान है।

जीवनके प्रत्येक पहलूमें शरीर और मनके प्रत्येक व्यवहारमें एक प्रकारकी कृत्रिमता आती जा रही है। जीवनमें जडता समा रही है। आदमी अब मशीन बनता जा रहा है। खाना-पीना, सोना, उठना-बैठना, बोलचाल आदि सभी कुछ विवेकहीन लोहे या धातुकी मशीनकी तरह यन्त्रवत् चलने लगा है।

मशीनमें स्वयं कुछ भी सोचने-समझनेकी शक्ति नहीं होती। वह तो उचित-अनुचित, समय-असमय, दिन-रात आदिका विचार किये बिना केवल चलना, गिरना, उठना या स्पन्दन करना ही जानती है। वैसे ही आज मनुष्य अपना विवेक खोकर अर्थात् भोजन, विश्राम, व्यायाम, चिन्तन और

कामका संतुलन छोड़कर यन्त्रवत् जड-जीवनको ही अपना वास्तविक और स्वाभाविक जीवन समझ बैठा है।

प्रातःकाल बिना मुख धोये 'पलंग-चाय' (बेड टी) पी लेना और उसके बाद बीड़ी-सिगरेट, हुक्का या तंबाकू (सुर्ती, खैनी आदि) की झड़ी लगा देना उसके लिये बहुत मामूली-सी बात है, क्योंकि उसने उन मादक वस्तुओंके आविष्कार तथा प्रचार-प्रसारकी भूल-भुलैयामें फँसकर यह गलत धारणा बना ली है कि उनके सेवनके बिना उसकी सुस्ती दूर नहीं होती, बिस्तरको छोड़नेका मन नहीं करता, उसको शौचकी हाजत नहीं होती या उसे शौच ही नहीं होता। इसलिये जबतक शौच न हो जाय, तबतक वह दो-तीन कप चाय पी लेनेमें अथवा दो-चार सिगरेट फूँक देनेमें कोई हर्ज या हानि नहीं मानता। बल्कि शौचकी हाजत (प्रेरणा) की प्रतीक्षामें ही, प्रातःकाल बाहर न जाकर घरमें ही बैठकर अखबार पढ़ता रहता है या कभी-कभी इसी कशमकश और इंतजारीकी हालतमें अनायास घरवालोंसे तू-तू, मैं-मैं या झगड़े-टंटे मोल लेता रहता है।

देरमें सोना, देरसे उठना; सात-सात, आठ-आठ बजेतक सोये रहना; शौच, मुख-मार्जन, हजामत, बूट-पालिश तथा स्नान करते-करते ही नौ-साढ़े-नौ बजा देना; भूख हो या न हो, पर साढ़े नौ बजेतक भोजन करने बैठ जाना और हबर-हबर अथवा ठूस-ठूसकर, बिना चबाये, किसी प्रकार जल्दी-जल्दी खाना, निगलना या गटकना, क्योंकि ठीक १० बजे कार्यालय पहुँचना है; घड़ी देखकर चाय पीना, घड़ी देखकर रोटी खाना; हर घड़ी, बस घड़ीका ही ध्यान रखना और घड़ी-घड़ी उन्हीं भूलों एवं त्रुटियोंको दोहराना—संक्षेपमें यही तो आजका मानव-जीवन है।

पेट साफ हुआ है या नहीं, भूख लगी है या नहीं, इस समय यह चीज खानी चाहिये या नहीं, इतनी मात्रामें इस प्रकारका भोजन करना ठीक है या नहीं, यह कुछ सोचने-विचारनेकी इच्छा हो भी, तो उसके लिये अवकाश नहीं रहता, और यदि पेटकी गड़बड़ी, कब्ज या अजीर्ण (अक्षुधा) से कभी किसी समय भोजन न करनेकी आन्तरिक प्रेरणा हुई भी, तो संयम (आत्म-नियन्त्रण) के अभावमें उसका पालन नहीं हो पाता।

कभी किसीने टोक दिया अथवा स्वयं ही कुछ आत्मग्लानि-सी हुई कि हम ये अनियमितताएँ अथवा असंयम क्यों करते हैं तो मनुष्य परिस्थितियोंको दोष देकर आत्म-संतोष कर लेता है!

बाहर काम-काजके समय भी मित्रोंके साथ चाय, नाश्ता एवं धूम्रपान करना-कराना, आधी-आधी राततक सिनेमामें आँखें फोड़ना, कुत्सित और दूषित भावनाओंको जाग्रत् करनेवाले साहित्यका सर्जन तथा पठन-पाठन करना, रात्रिमें बहुत देरसे सोना आदि स्वास्थ्यको बिगाड़नेवाले साधन अपने चारों ओर जुटाये रहना आजकल सभ्यताका सूचक माना जाता है।

हमारा शरीर इन तमाम अनियमितताओंको सहन करते हुए, इनके ही अनुकूल बननेकी भरपूर कोशिश करता रहता है और हम आधुनिक सभ्यताके प्रवाहमें प्रायः निरन्तर अपने शरीरके प्रति अनाचार, अत्याचार करते रहते हैं। लेकिन जबतक बेचारा शरीर किसी-न-किसी बीमारी या व्याधिके रूपमें अपनी लाचारीको प्रकट नहीं कर देता, तबतक यह सब समझमें नहीं आता।

जवानीकी मस्तीमें अनियमित, असंतुलित एवं अमर्यादित आहार-विहारको ही लोग आनन्द-उपभोगका एकमात्र साधन मानते हैं। कोई अनुभवी व्यक्ति जब उनका ध्यान इसके दुष्परिणामस्वरूप सम्भावित बीमारीकी ओर आकर्षित करता है, तो उन्हें बुरा लगता है तथा उसे वे 'मूर्खतापूर्ण उपदेश' कहकर उसका मजाक उड़ाते हैं। यहाँतक कि किसी रोग-विशेषसे आक्रान्त होनेतक उनकी जवानीका नशा नहीं उतरता।

भोजनको बिना चबाये या बहुत कम चबाकर खाना, दाँतोंका काम कोमल आँतोंसे लेना और बिना भूखके भोजन करना तो मानो अधिकांश लोगोंने अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझ रखा है। लेकिन दाँतोंसे पर्याप्त काम न लेनेके कारण एक ओर जहाँ दाँत निकम्मे (खराब) होते हैं, वहीं दूसरी ओर प्रतिदिन आवश्यकता एवं क्षमतासे अधिक काम करते-करते पाचन-तन्त्र थक जाते हैं। आमाशय तथा आँतें दुर्बल हो जाती हैं। क्षुधा मन्द हो जाती है, भूख घटने लगती है, जो आन्त्र (पाचन-तन्त्र)-सम्बन्धी रोगोंकी पूर्व सूचनामात्र है। मन्दाग्नि या भूखकी कमीकी ओर ध्यान न देकर हम अपना गलत रवैया (असंयमित एवं असंतुलित आहार-विहार) पूर्ववत्

चालू रखते हैं, तो भूख सदाके लिये लुप्त हो जाती है। पेटमें कुछ भारीपन तथा वायुविकार (गैस्ट्रिक ट्रबुल) होने लगता है। अतएव यह बड़े महत्त्वकी बात है कि भूख मन्द पड़ते ही हमें सावधान होना चाहिये और समझना चाहिये कि हमारा पाचन-तन्त्र अति श्रमके कारण थककर रोग-ग्रस्त हो चुका है और उसकी चिकित्सा करके उसे मदद पहुँचाने और पुनः सबल (प्रज्वलित) बना लेनेकी अनिवार्य आवश्यकता उपस्थित हो गयी है।

## चिकित्सा-क्रमकी योजना

पाचन-तन्त्रके चार प्रमुख प्रत्यङ्ग हैं—(१) आमाशय, (२) छोटी आँत, (३) बड़ी आँत और (४) लिवर। दोषपूर्ण आहार-विहारका प्रभाव इन चारों प्रत्यङ्गोंपर भोजनके परिमाण और प्रकारके अनुसार न्यूनाधिक होता रहता है। जैसे घी, मक्खन, दूध, तेल आदि चिकनाईवाले पदार्थ अधिक खानेवालेका लिवर अन्य तीनों प्रत्यङ्गोंकी अपेक्षा अधिक खराब होता है। क्योंकि वसायुक्त (चिकने) पदार्थोंका पाचन मुख्यतः लिवरको ही करना पड़ता है।

इसी प्रकार अन्न अधिक और साग-सब्जी या फल अति अल्प मात्रामें अधिक दिनोंतक खानेवालेके भोजनमें फुचरे (फुजले या 'रफेज') के अभावसे उसकी बड़ी आँत अन्य तीनों प्रत्यङ्गोंकी अपेक्षा अधिक खराब होगी, अर्थात् उसे कब्जकी सम्भावना बढ़ जायगी, जिससे विभिन्न बीमारियाँ हो सकती हैं।

वैसे ही गलत मिश्रण (रांग कंबिनेशन) या अति गरम, अति शीतल, अति तीक्ष्ण, खट्टे-मीठे-चरपरे आहार किंवा पेय पदार्थोंका अधिकतर सेवन करते रहनेवालेका आमाशय अन्य तीनों प्रत्यङ्गोंकी अपेक्षा अधिक खराब होगा, जिससे आमाशयार्ति, अम्लता, आमाशयका व्रण इत्यादि बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं।

सारांश यह कि किसी अङ्ग या प्रत्यङ्गके अन्य अङ्गों या प्रत्यङ्गोंकी तुलनामें कुछ अधिक बिगड़ जाने या खराब होनेसे प्रकट होनेवाले रोगोंका नामकरण उस अङ्ग या प्रत्यङ्ग-विशेषके नाम या कार्यपर आधारित हो सकता है। परंतु वास्तवमें तो मनुष्यकी बुरी आदतों और उसके गलत आहार-विहारके कारण पाचन-तन्त्रके स्वरूप और कार्योंमें उत्पन्न होनेवाली विकृति एवं बाधाओंको ही अलग-अलग रोगके नामसे सम्बोधित किया जाता है। थकान, विकृति या बाधा सौम्य तथा कम दिनोंकी होनेपर उसको तीव्र रोग (एक्यूट डिजीज) की संज्ञा दी जाती है और वही चिरकालिक या पुरानी हो तो उसको जीर्ण रोग (क्रानिक डिजीज) कहा जाता है।

लेकिन जब यह स्पष्ट हो गया कि अङ्ग-प्रत्यङ्गोंकी थकान, विकृति या बाधा ही तमाम रोगोंकी जड़ है, तो यह निर्विवाद हो जाता है कि बीमारीको जड़से निकाल फेंकनेके लिये अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गोंको विश्राम (आराम) देना ही प्रधान चिकित्सा है। (क्रमशः) —(डॉ॰ श्रीशरणप्रसादजी)

## प्राणप्यारे !

(श्रीमान् महाराज राणा राजेन्द्रसिंह जू देव बहादुर 'सुधाकर'

चित्तको चुराते हो छुपाते हो न जाने कहाँ,<br>
चुटकीमें अपने ही प्रेमीको उड़ाते हो।<br>
रीत यह प्रीतकी तुम्हारी है अनोखी कैसी,<br>
आभा-सी दिखाके कहीं जाके छुप जाते हो॥<br>
ध्यानमग्न मैं तो हूँ, 'सुधाकर' मुझे तो तुम<br>
खाते-पीते जाते-आते सोते देख पाते हो।<br>
बार-बार कहते हो, आता हूँ, मैं आता हूँ, पै,<br>
कहके भी प्रानप्यारे! क्यौं न पास आते हो?

# पढ़ो, समझो और करो

(१)

## मानवकी दयालुता

घटना अक्टूबर १९८९ ई० की है। भगवत्प्रेरणासे मुझे भी अपने पिताजीके साथ वैष्णोदेवीकी यात्राका सौभाग्य प्राप्त हुआ। हमलोग अपने घरसे ४ अक्टूबरको चले थे। जम्मू स्टेशन पहुँचकर वहाँसे बसद्वारा कटरा पहुँचे। कटरासे माताजीके स्थानतक चौदह कि० मी० की पैदल चढ़ाई है। कुछ यात्री पैदल ही जाते हैं और कुछ असमर्थ लोग घोड़े आदिसे वैष्णोदेवी पहुँचते हैं। हमलोग पैदल ही गये थे। प्रातःकाल हमलोगोंने माँ वैष्णोदेवीके दर्शन किये। दिनभर रहकर सायंकाल हमलोग वहाँसे वापस चल पड़े। वहाँसे सात कि०मी० नीचे अर्धकुमारी नामक एक प्रसिद्ध स्थान है । हमलोगोंने रात्रिमें वहीं निवास किया।

हमलोग जिस कमरेमें विश्राम कर रहे थे, उसके पड़ोसके कमरेसे रह-रहकर आ रही रोनेकी आवाजसे हम सभीका ध्यान उस ओर गया। हमने वहाँ जाकर देखा और हमें पता लगा कि वह रोनेवाली महिला अपनी सास, पति एवं अपने छोटे बच्चेके साथ हरियाणा-(रेवाड़ी) से माताजीके दर्शनके लिये यहाँ आयी हुई है, रास्तेमें अपने बच्चेके अचानक खो जानेसे रो रही है। परिवारके सभी लोग अत्यन्त परेशान हैं।

खोया हुआ बच्चा उस महिलाका इकलौता पुत्र था, जिसकी अवस्था लगभग सात वर्षकी थी। रास्तेमें पैदल चलते समय वह बच्चा अचानक आँखसे ओझल हो गया। परिवारके सभी लोग स्वाभाविक रूपसे उसे खोजने लगे। उस महिलाके पतिदेवने उस स्थान-(अर्धकुमारी)-से सात कि० मी० ऊपर तथा सात कि० मी० नीचेतक जाकर उस बच्चेकी खोजमें चप्पा-चप्पा छान डाला। निर्जन पहाड़ी स्थान, ऊबड़-खाबड़ जमीन, अगल-बगल नदी-नाले—ऐसी स्थितिमें पारिवारिकजनोंका चिन्तित होना स्वाभाविक था। उन लोगोंके मनमें कई प्रकारकी आशंकाएँ उठने लगीं। देर राततक वे उसे खोजते ही रहे। अन्ततोगत्वा निराश होकर दुःखी मनसे उस स्थानपर आकर बैठ गये और वह महिला रातभर रोती रही तथा भगवती वैष्णोदेवीको मनाती रही। उसके मनमें यह बात आती थी— 'हम तो दर्शन करने आये, पर यह अनिष्ट क्यों कर हुआ ?' यद्यपि उस महिलाकी सास अपनी बहूको बार-बार सांत्वना भी देती थी और धैर्य बँधानेका प्रयास भी करती थी। वह कहती—'बेटी ! अधीर मत होओ, यह माँका क्षेत्र है। माँ तो दूसरोंका दुःख दूर करती हैं, किसीका अनिष्ट नहीं करतीं, तुम केवल माँका स्मरण करो।'

किसी प्रकार रात्रि बीती। प्रभात हुआ। वह दम्पति और वृद्धा माता आशा-निराशाकी तरङ्गोंमें गोते खाते हुए छलकते आँसुओंके साथ आगे बढ़ने लगे। थोड़ी ही दूर आगे बढ़े होंगे कि मार्गमें बाणगङ्गापर उनका बच्चा उन्हें स्नान करता हुआ दिखायी दिया। वे झट दौड़ते-दौड़ते उसके पास गये और अपने इकलौते बच्चेको देखकर माता-पिता और सब लोग हर्षोत्फुल्ल होकर आश्चर्यचकित हो गये। अपने खोये हुए बालकको पाकर उस महिलाके हर्षका तो कुछ ठिकाना ही न रहा। उसने मन-ही-मन माँकी वन्दना की और उस दयालु व्यक्तिको, जिसने निर्जन वनमें रोते हुए उस अबोध बालकको रात्रिभर अपने घरमें आश्रय दिया और जिस-किसी प्रकार ढाढ़स बँधाया था, हृदयसे उन सबने उसका आभार व्यक्त किया और पराम्बा भगवतीका साधुवाद करते हुए वे सब आगे बढ़ गये। हम सब भी माँकी यह अनुकम्पा देखकर श्रद्धावनत हो गये। —श्रीओमप्रकाशजी भवण

(२)

## एकादशी-व्रतकी महिमा

**(श्रीमज्जगद्गुरु शंकराचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर ब्रह्मलीन पूज्यपाद स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराजके श्रीमुखसे सुनी एक सत्य घटना)**

जब हमारा प्राणप्रिय धर्मप्राण भारतदेश अध्यात्म-दृष्टिसे परमोन्नतिपर था, उस समय हमारे देशका प्रत्येक हिन्दू बच्चा-बच्चा शास्त्रानुसार, सनातनधर्म और वर्णाश्रमधर्मानुसार पवित्र जीवन व्यतीत किया करता था। उस समय प्रायः प्रत्येक आस्तिक व्यक्ति एकादशीका व्रत-उपवास रखना अपना परम धर्म समझता था। एकादशीके दिन अन्नमें पापका वास होता है, यह मानकर एकादशीके दिन भूलसे भी अन्न ग्रहण करना पाप माना जाता था। एकादशीके दिन लोग व्रत-उपवास रखकर रात्रिभर जागरण करके भगवन्नाम-संकीर्तन-

द्वारा प्राप्त मानव-जीवनका सफल सदुपयोग किया करते थे।

बहुसंख्यक हिन्दू-परिवारके एकादशीव्रत रहनेसे लगभग एक अरब मनुष्योंके लिये एक दिनका अन्न बच जाता था। इस प्रकार घर बैठे जहाँ परलोक बनता था, वहीं महान् पुण्योंकी प्राप्ति भी होती थी।

एकादशीव्रत रहनेसे पेटकी अनेक बीमारियाँ स्वतः ही मिट जाती हैं। दुर्भाग्यकी बात है कि हमारे कुछ भाई अपने इस धर्मप्राण देशमें जन्म लेकर और यहाँका अन्न-जल ग्रहण करके भी अपनी ही संस्कृति और सनातनधर्मकी कार्य-पद्धतिका अपने अज्ञानवश विरोध किया करते हैं।

एकादशीके दिन व्रत-उपवास रखनेकी कैसी अद्भुत और विलक्षण महिमा है, इस सम्बन्धकी एक महान् आश्चर्यजनक सत्य घटना 'कल्याण'के पाठकोंके सामने प्रस्तुत की जा रही है। आशा है, सभी श्रद्धालु पाठक इसे बड़े ही ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे। घटना इस प्रकार है—

एक बार भारतके सुप्रसिद्ध ब्रह्मलीन प्रातःस्मरणीय ज्योतिष्पीठके शंकराचार्य अनन्तश्रीविभूषित श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज विश्वनाथपुरी—काशी पधारे। उस दिन एकादशी थी। पूज्य आचार्यजी अपने नियमानुसार एकादशीके दिन स्वयं निराहारव्रत रहकर, अन्य लोगोंको भी एकादशी-व्रत रखनेकी प्रेरणा दे रहे थे। आप सबको एकादशीका व्रत रखनेका उपदेश देनेके साथ ही उनसे यह भी कहा करते थे कि जहाँ एकादशीके दिन अन्न ग्रहण करना पाप है, वहाँ एकादशीके दिन चाय पीना, तंबाकू, बीड़ी आदि मादक वस्तुओंका सेवन, पान खाना और भी पाप है। इनके सेवन करनेसे तामसी वृत्ति बनती है तथा शुभकार्य निष्फल हो जाते हैं। अतः इन दुर्व्यवसनोंसे सदा बचना चाहिये। इस घोर कलिकालमें एकादशीका व्रत रखना, भगवान्के नामका जप करना, नित्यप्रति सूर्यार्घ्य देना और श्रीगङ्गास्नान करना, कथा-श्रवण करना तथा अपने-अपने वर्णाश्रमधर्मके अनुसार सादगीपूर्ण सदाचारमय जीवन व्यतीत करना एवं नित्यप्रति गो-सेवामें तत्पर रहना—आत्मकल्याणके लिये सीधे साधन हैं।

एक दिन पूज्य आचार्यचरणने अपने पासमें आये एक ब्राह्मण ब्रह्मचारीसे प्रश्न किया—'ब्रह्मचारी! क्या तुम आज एकादशीका व्रत किये हो?'

**ब्रह्मचारी**—जी नहीं महाराजजी!

**पूज्य जगद्गुरुजी**—हिन्दू होकर, फिर ब्राह्मण-कुलमें जन्म लेकर और ब्रह्मचारी होकर भी तुमने एकादशीका व्रत नहीं रखा? यह तो बड़े आश्चर्यकी बात है?

**ब्रह्मचारी**—महाराजजी! एकादशीका व्रत तो मैं कभी नहीं रखता।

**पूज्य जगद्गुरुजी**—अरे, फिर तुम कैसे हिन्दू हो? किस प्रकार ब्रह्मचारी कहलाने योग्य और कैसे ब्राह्मण हो कि तुम एकादशीका व्रत भी नहीं रख सकते।

एकादशी-व्रत रखनेकी बड़ी ही अद्भुत और विलक्षण महिमा है। जिसका हमारे सभी शास्त्र-पुराणोंमें उल्लेख है। एकादशी-व्रत रखनेका बड़ा भारी माहात्म्य है और महान् पुण्य है, जिसे आज लोग अपनी मूर्खतावश भुला बैठे हैं। परलोकमें एकादशीका व्रत बड़ा काम देता है। एकादशी-व्रत करनेवालेको यमदूतोंकी मार-प्रताड़ना आदिका कोई भय नहीं रहता। इससे हमारा सब प्रकारसे कल्याण होता है। यह हमारे शास्त्र-पुराणोंकी बात है। यह कोई मात्र गप्पबाजी और कपोल-कल्पना नहीं है। यह अक्षर-अक्षर बिलकुल सत्य है।

हमें एक बार दो मुसलमान मिले थे, जो विधर्मी होकर भी प्रत्येक एकादशीको उपवास किया करते थे।

पूज्यपाद आचार्यचरणके श्रीमुखसे इतना सुनकर वहाँ उपस्थित लोगोंने जिज्ञासावश एकादशी-व्रत रखनेवाले मुसलमान भाइयोंसे सम्बन्धित घटना सुननेकी उत्सुकता दिखायी और इसके लिये पूज्य आचार्यचरणोंसे प्रार्थना की। तब पूज्य श्रीमहाराजजीने उक्त सच्ची घटना आद्योपान्त इस प्रकार सुनायी। श्रीआचार्यचरणने कहा—

एक बार हम सनातनधर्मका प्रचार करते हुए राजस्थान गये हुए थे। वहाँपर हम एक बगीचेमें ठहराये गये थे और उस दिन दैवयोगसे एकादशीका पवित्र दिन था। वहाँपर अनेक श्रद्धालु भक्त हमारे पास आये हुए थे। उनमें दो मुसलमान सज्जन भी हमसे मिलने आये। उन्होंने दूरसे ही हमें अभिवादन किया और एक ओर बैठ गये। जब हमारे एक ब्रह्मचारीने हमारे पास भेंटमें आये फलोंको प्रसादके रूपमें सभीको बाँटना प्रारम्भ किया तो हमने उन ब्रह्मचारीसे कहा कि 'भाई! कुछ प्रसाद सामने बैठे हुए उन मुसलमान भाइयोंको भी दे दो।'

तदनुसार जब ब्रह्मचारी उन दोनों मुसलमानोंको प्रसाद देनेके लिये आगे बढ़े तो उन दोनों मुसलमानोंने बड़ी ही श्रद्धा-भक्तिके साथ हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक कहा—'महाराजजी ! आज तो हमारा एकादशीका दिन है। हम दोनों ही एकादशीके दिन निर्जल व्रत रखते हैं। इसीलिये आज हम कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे।' उन मुसलमान भाइयोंके मुखसे उनके द्वारा एकादशीके दिन निर्जल व्रत रखनेकी बात सुनकर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही पूरी बात जाननेकी उत्कण्ठा भी हुई कि मुस्लिम भाइयोंको भला एकादशीव्रत रखनेसे क्या प्रयोजन और क्या सम्बन्ध ! जिज्ञासावश हमने उन दोनों सज्जनोंको पास बुलाकर पूछा कि आप दोनों मुसलमान हैं। फिर मुस्लिम होकर एकादशीका निर्जल व्रत रखनेका कारण और उद्देश्य क्या है ? एकादशीका व्रत तो हिन्दूमात्र रखते हैं। आपलोग एकादशीका व्रत कबसे और कैसे रखने लगे हैं। पूरी बात बतायें।

उत्तरमें दोनों मुस्लिम भाइयोंने अपने जीवनकी एक महान् आश्चर्यजनक सत्य घटना सुनाते हुए हमें बताया कि हमारे द्वारा अनिच्छासे एकादशीके दिन नकली व्रत रखनेसे किस प्रकार परलोकमें यम-यातनासे हमारी रक्षा हुई। उन्होंने बताया—'यद्यपि हम दोनों जातिके मुसलमान हैं और गाड़ी चलाकर सामान तथा बोझा एक स्थानसे दूसरे स्थानतक पहुँचाकर पेट पालते हैं। एक दिन हम भाड़ेपर अपनी गाड़ी ले गये थे। गाड़ी चलानेके कार्यमें हम उस दिन ऐसे व्यस्त रहे कि हमें उस दिन अन्न और जल (खाने-पीनेको) कुछ भी नहीं मिला। इस प्रकार उस दिन हम दोनों ही पूरी तरह भूखे-प्यासे रह गये और एक बागमें जाकर ठहर गये। भूखे-प्यासे तथा थके होनेके कारण हम सो गये। उस दिन उस बागमें तीन अन्य व्यक्ति भी वहाँ ठहरे हुए थे। वे भोजन बनाकर खा रहे थे। उस दिन रात्रिमें हमने देखा कि हमारी मृत्यु हो गयी है। हमारे पास भयंकर आकृतिवाले कुछ यमदूत आये और उन्होंने हम पाँचों आदमियोंको पकड़ लिया। वे हमें यमपुरी ले गये। वहाँ हमने देखा कि सूर्यके समान एक अत्यन्त तेजस्वी राजपुरुष-जैसे कोई व्यक्ति एक सुन्दर सिंहासनपर बैठे थे। उन्होंने हमको पकड़कर ले जानेवाले अपने उन अनुचर दूतोंसे पूछा कि 'तुम इन दोनोंको पकड़कर यहाँ क्यों लाये हो ? ये दोनों तो आज एकादशीका निर्जल व्रत रखे हुए हैं। इन्हें तुरंत यहाँसे ले जाओ। जहाँसे इन्हें पकड़कर लाये हो, उसी स्थानपर ले जाकर इन्हें छोड़ आओ। एकादशी-व्रतके पुण्यसे इनकी आयुके कुछ दिन और बढ़ गये हैं।'

उनके ऐसा कहनेपर यमदूत हम दोनोंको अपने साथ लाकर वापस, उसी बगीचेमें छोड़ गये। जब हम अपने शरीरमें वापस आ गये और हमें होश हुआ, तब हमने आँखें खोलीं तो हम दोनों परलोकमें घटित घटनापर आपसमें विचार करने लगे। हमें सभी बातें प्रत्यक्ष मालूम हुईं। बड़ा आश्चर्य हुआ। अनुभवमें आयी हुई घटनामें निर्जल एकादशीव्रत रखनेकी बात हमें विशेषरूपसे याद रही। जिसके विषयमें प्रसंगवश हमने हिन्दू भाइयोंके मुखसे कभी-कभी सुना अवश्य था, पर विशेषरूपसे ध्यान कभी न दिया। इससे पहले हमने अपने अबतकके जीवनमें कभी एकादशी-व्रत रखनेकी बात न तो कभी सोची थी और न उसके विषयमें हम कुछ जानते ही थे। हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि हम दोनों ही मुसलमान हैं और एकादशीका व्रत रखना जानते भी नहीं हैं और न हमने कभी एकादशीका व्रत रखा ही है। फिर वहाँ हम दोनोंको एकादशीका व्रत रखनेवाला कैसे बताया और कैसे मान लिया ? पूरी जानकारी करनेके लिये हमने तुरंत अपने गाँवमें आकर सबसे पहले एक हिन्दू पण्डितजीकी खोज की। उनके पास जाकर हमने पूछा—'पण्डितजी ! कल आप हिन्दू लोगोंकी कौन-सी तिथि थी और कौन-सा व्रत था ?' पण्डितजीने कहा कि कल 'भीमसेनी' एकादशीका पुण्यमय व्रत-दिवस था। अब तो पण्डितजीसे यह मालूम होनेपर हमारे आश्चर्यका ठिकाना न रहा। हमने पूरी बात पण्डितजीको बतलायी, तो उसे सुनकर पण्डितजीने ऐसा होना सम्भव बतलाया तथा एकादशीकी महिमा एवं हिन्दूशास्त्रोंकी कुछ अन्य बातें भी उन्होंने बड़े प्रेमसे हमें समझायीं। हिन्दुओंके एकादशी-व्रतकी ऐसी अद्‌भुत महिमा है, यह जानकर तथा सुनकर हमें उसी दिनसे एकादशी-व्रतके प्रति बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। जब बिना किसी निश्चय और संकल्पके अनजानेमें एकादशीके दिन भूखे-प्यासे रहनेमात्रसे हमें एकादशीके व्रत रखनेका फल प्राप्त हो गया तथा एकादशीका व्रत न रखनेपर भी हमें एकादशीका व्रत रखनेवाला मान लिया गया और

फलस्वरूप हमारे उस नकली एकादशीके व्रतने हमें यम-यातना तथा मृत्युसे बचा लिया, फिर यदि हम वास्तवमें प्रति एकादशीका व्रत रखें तो फिर हमारे महान् पुण्योंका क्या ठिकाना है। ऐसा विचार करके हम दोनों व्यक्ति उसी समयसे प्रत्येक एकादशीके दिन बराबर उपवास रखा करते हैं।

एकादशीके दिन हम अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं करते। मुसलमान होकर भी हम एकादशीका व्रत रखते हैं और हमने उसी दिनसे मांस-मछली, अंडा, मुर्गा आदि हिंसायुक्त अखाद्य सेवनका भी सदाके लिये परित्याग कर दिया है। अब हमारा यह विश्वास हो गया है कि 'सात्त्विक, सदाचारी, पवित्र—धर्ममय सादा जीवन ही बिताना चाहिये।' उन मुसलमान भाइयोंके मुखसे एकादशी-व्रतकी महिमाकी यह बात सुनकर सभीको बड़ा आश्चर्य हुआ।

पूज्य आचार्यचरणका कथन था कि यह हमारे शास्त्र-पुराणोंकी अद्भुत महत्ता सत्य सिद्ध करनेवाली चमत्कारिक घटना है, जो सत्य-सनातनधर्मको महिमान्वित करती है। हमारे सनातनधर्मकी महिमाके समक्ष समय-समयपर अन्य धर्मावलम्बी भी नतमस्तक हुए हैं। हमारे हिन्दू शास्त्रोंकी बातें अक्षर-अक्षर सत्य, प्रामाणिक तथा लोक-कल्याणकारी हैं। यदि हमने अपने शास्त्रोंके आज्ञानुसार जीवन बनानेकी चेष्टा करते हुए अपना लोक-परलोक नहीं बनाया तो हम स्वयं अपना, अपने धर्मका, समाजका एवं धर्ममूर्ति अपने इस देशका सुधार तथा परम कल्याण नहीं कर सकेंगे।

—भक्त श्रीरामशरणदासजी

(३)

### गायोंकी आँखोंमें आँसू छलक आये

अभी हालमें ही मथुरामें एक ऐसी विचित्र घटना घटी कि जिसे देख-सुनकर लोग बड़े आश्चर्यचकित हो गये। घटना इस प्रकार है—मथुरा-वृन्दावन-मार्गपर ८५ वर्षीय श्रीप्यारेलाल नामक एक सज्जन निवास करते थे। वे गोशालाकी गायें चराया करते थे। श्रीप्यारेलालजी बड़े गो-भक्त थे। गायोंकी खूब सेवा करते थे। बारह वर्षकी उम्रसे ही वे गायें चरानेका काम करते थे। उन्होंने गायोंके अलग-अलग नाम भी रखे थे। जब किसी गायका नाम लेकर पुकारते थे तो वह गाय उनकी ओर दौड़ी चली आती थी। गौएँ भी उनके गो-प्रेमको समझती थीं।

इस प्रकार बहुत समय बीत गया। एक दिन श्रीप्यारेलालजी ईश्वरको प्यारे हो गये। जब उनकी अरथी उस गोशालाके पाससे गुजरने लगी तो वे सभी गायें शव-यात्राके लोगोंको घेरकर खड़ी हो गयीं। कुछकी आँखोंमें आँसू भी थे। यह देखकर सभी लोग बहुत विस्मित हुए और कहने लगे कि देखो श्रीप्यारेलाल-जीका और इन गायोंका कितना विशुद्ध प्रेम है। ये गायें प्यारेलालजीको छोड़ना नहीं चाहती हैं।' आगेका रास्ता गायोंसे घिर जानेसे शव-यात्रा कुछ देरके लिये रुक गयी। लोगोंने किसी प्रकार बड़े प्रयत्नसे रास्तेसे गायोंको हटाकर आगे जानेके लिये मार्ग बनाया। वहाँ आस-पास बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गयी। सभी लोग श्रीप्यारेलालजीके और इन गायोंके परस्पर प्रेमको देखकर भाव-विभोर हो गये। (स्वतन्त्र-चेतना)

## मनन करने योग्य

### कंजूस व्यापारी

एक शहरमें एक व्यापारी रहता था, जो अत्यन्त ही निर्दयी, कठोर एवं कंजूस था। कभी भी वह भिखारियोंको भीख नहीं देता था, बल्कि उन्हें झिड़क देता था। उसकी पत्नी नेक एवं धर्मपरायणा थी। वह साधु-महात्माओंकी आव-भगत करती रहती।

एक दिन उसके घरपर एक महात्माजी आये। उसकी पत्नीने उनका यथोचित सत्कार किया। उस समय वह व्यापारी भी वहाँ पहुँच गया।

महात्माने कहा—'प्रत्येक व्यक्तिके लिये धन अर्जन करना आवश्यक तो है, परंतु उसे इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि धन मनुष्यके उपयोगके लिये है, न कि मनुष्य धनके उपयोगके लिये। मनुष्यका जीवन केवल धनार्जनमें ही व्यतीत नहीं होना चाहिये। मृत्युके पश्चात् सब कुछ यहीं रह जाता है। अतः प्रत्येक मनुष्यको अपने धनका सदुपयोग

करना चाहिये। धनका सदुपयोग यही है कि इससे असहाय, निर्धन और पीड़ित लोगोंकी सहायता की जाय।

व्यापारी उनकी बातोंको ध्यानपूर्वक सुन रहा था। उसने कहा—'परिश्रमपूर्वक अर्जित किये गये धनको एक क्षणमें दूसरोंको देनेमें कोई बुद्धिमानी नहीं है।'

महात्माजीने कहा—'यदि धनका सदुपयोग नहीं किया जाता है, तो प्रकृति उसे स्वयं छीन लेती है। मृत्युके पश्चात् उसका जन्म कुत्ता-जैसे स्वार्थी प्राणियोंमें होता है एवं उसे कई यातनाएँ सहनी पड़ती हैं।'

उस दिन महात्माजीने वहीं भोजन किया। उसके पश्चात् वे अन्यत्र चले गये। व्यापारी खिन्न था, क्योंकि उसके एवं महात्माजीके विचारोंमें मतभेद था। भोजनोपरान्त वह विश्राम करने लगा। उसे नींद आ गयी। उसी अवस्थामें उसने देखा—

वह व्यापारी बीमार पड़ता है। डॉक्टरने उसे बचानेका यत्न किया, परंतु उसका देहावसान हो गया। उसका पुनर्जन्म एक कुत्तेकी योनिमें हुआ। परंतु पूर्वजन्मकी सारी बातें उसे स्मरण थीं।

अपनी पत्नी, बाल-बच्चे, घर-द्वार, व्यापार आदि सबकी स्मृति उसे थी। अतः वह मोहके वशीभूत होकर अपने घरके आस-पास चक्कर लगाता था। अपनी पत्नी एवं बाल-बच्चोंको एकटक निहारा करता था। परंतु उसके परिवारवाले उसे एक कुत्ता समझकर सदैव तिरस्कृत करते थे। कुत्तेको इसका दुःख नहीं था, क्योंकि वह समझता था कि लोग अज्ञानवश ही उसके साथ दुर्व्यवहार करते हैं, वह वहाँका चक्कर लगाता था।

एक दिन उसे अपनी दुकानकी याद आयी और वह उसी ओर चल पड़ा। वह दुकानकी प्रत्येक वस्तुको बड़े ध्यानपूर्वक देख रहा था। उस दुकानको बनानेमें उसे अनेकों कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा था। उसे सब स्मरण होने लगा।

दुकानमें गुड़का एक ढेर था, उसे वह प्रसन्नतापूर्वक देख रहा था। उसे गुड़ खानेकी इच्छा हुई। वह दुकानमें जाकर गुड़का स्वाद लेने लगा।

उस समय उसका पुत्र दुकानके भीतर कुछ काम करनेमें व्यस्त था। कुछ ही क्षणोंके पश्चात् उसका पुत्र वहाँ आया और कुत्तेको वहाँ देखकर वह आग-बबूला हो गया। उसने उसे क्रोधपूर्वक डाँटा। परंतु बेचारा कुत्ता आनन्दपूर्वक गुड़ चाटता ही रहा। उसके पुत्रने एक डंडेसे उसपर प्रहार किया। फिर भी वह हटा नहीं। उसने सोचा कि लड़का नादान है।

फिर उसके पुत्रने जोरोंसे उसे डंडेसे मारा। बेचारा कुत्ता उस चोटको बर्दाश्त नहीं कर सका और भौंकते हुए वह दुकानसे बाहर चला गया एवं अपनी भाषामें उसे कोसने लगा—'मेरा धन और मुझपर ही यह प्रहार करता है।'

उसके पश्चात् वहाँ ग्राहक आने लगे। कुत्तेके भौंकनेसे उसके व्यापारमें व्यवधान पड़ रहा था। उसके पुत्रने एक पत्थर फेंककर उसपर वार कर दिया। उस पीड़ासे वह मर्माहत हो गया।

उसी समय उस व्यापारीके पुत्रने उसके कमरेमें प्रवेश किया एवं अपने पिताको नींदसे जगा दिया।

पुत्रने कहा—'पिताजी! एक व्यापारी दूसरे शहरसे आया है। वह आपसे मिलना चाहता है।'

वह व्यापारी घबड़ाकर उठ बैठा। यद्यपि यह था तो स्वप्न, पर इस स्वप्नने उसे विचलित कर दिया और उसे महात्माजीकी बातोंमें सत्यताका आभास होने लगा। और उसके मनमें यह निश्चय हो गया कि धनमें मोह और आसक्ति रखकर उसका सदुपयोग नहीं करना अर्थात् पारमार्थिक कार्योंमें खर्च न करना अपनी दुर्गतिको ही निमन्त्रण देना है। उसके मनपर इतना असर पड़ा कि उसने उसी क्षण अपने ग्राहकोंसे विनम्रतापूर्वक व्यवहार करनेका संकल्प ले लिया। इन्हीं बातोंपर विचार करता हुआ वह बाहरसे आये हुए व्यापारीसे मिलने चला गया।

—प्रोफेसर श्रीपशुपतिनाथजी उपाध्याय
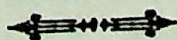
**अपने सारे कार्य भगवान्‌की सेवा समझकर करते रहो, फिर परम सत्यस्वरूप भगवत्प्रकाशकी निर्मल ज्योतिसे तुम्हारा हृदय चमक उठेगा। तुम्हारी किसी चेष्टाके बिना ही, तुम्हारे अनजानमें ही तुम्हारा ज्ञान सत्यके प्रकाशसे प्रकाशित हो जायगा।**

# समाज किस ओर जा रहा है

दैवी और आसुरी समाजका यही भेद है कि दैवी समाजमें दैवी गुणोंका आदर तथा ग्रहण होता है और उन्हींको जीवनकी सर्वथा रक्षण करनेयोग्य बहुमूल्य सम्पत्ति माना जाता है एवं आसुरी समाजमें दैवी गुणोंका अनादर तथा त्याग होता है एवं आसुरी गुणोंका सत्कार—ग्रहण होता है तथा उन्हींको जीवनकी परम सम्पत्ति मानकर उनके होनेमें गौरवका अनुभव किया जाता है। आज समाजमें आसुरीभाव बढ़ रहा है, इसीलिये सत्य, ईमानदारी, संयम और सदाचार तथा त्यागका तिरस्कार हो रहा है और असत्य, बेईमानी, असंयम, यथेच्छाचार तथा अधिकारका आदर तथा गौरवके साथ ग्रहण किया जा रहा है और इसीको आदर्श मानकर लोग बड़े चावसे आँखें मूँदकर इसी ओर दौड़े चले जा रहे हैं।

किसी युगमें सत्यका आदर था, सत्यवादी ही बुद्धिमान् और चरित्रवान् माना जाता था। हरिश्चन्द्र और युधिष्ठिरका नाम लोग बड़े आदरसे लेते और उन्हें आदर्श मानते थे। सत्य तथा ईमानदारीकी रक्षाके लिये लोग बड़े-से-बड़ा त्याग करनेको प्रस्तुत रहते थे। झूठ बोलना या किसीको धोखा देना समाजमें ही नहीं, प्रत्येक व्यक्तिके अपने मनमें भी बड़ा भारी अपराध था। कोई ऐसा करता या किसीका असत्य, बेईमानी या धोखेका बर्ताव साबित हो जाता तो समाजमें उसका तिरस्कार होता था। उसे पाँच आदमियोंके सामने—समाजके सामने झेंपना पड़ता था, नीचा देखना पड़ता था, समाज उसे नीची दृष्टिसे देखता था। पर आज यह बात नहीं है। आज सभी जानते हैं कि हमारे यहाँ बड़े-से-बड़े व्यापारी भी ऐसे कोई बिरले ही हैं, जो सच्चे तथा ईमानदार हों तथा जो व्यापारमें चोरी, बेईमानी न करते हों। सरकारी अधिकारियोंमें भी सच्चे, ईमानदार आदमी बहुत थोड़े ही हैं। बल्कि आज झूठ, चोरी, बेईमानीको दक्षता, बुद्धिमानी, चातुरी और व्यापारकुशलता समझा जाता है और ऐसे लोग छाती ठोंककर समाजके सामने अपना बड़प्पन प्रकट करते हैं तथा समाज उनका समर्थन और उनके बड़प्पनको स्वीकार ही नहीं करता, प्रत्युत उनकी पूजा करता, उन्हें सम्मान देता और उनका अनुकरण करना चाहता है। यह जो केवल अर्थको सामने रखकर असत्य, बेईमानीका समर्थन और समादर है—यह जो चोर-पूजा है सो आसुरी सम्पत्तिकी प्रत्यक्ष विजय है। इसीलिये समाजका एक-एक व्यक्ति आज झूठ, चोरी, बेईमानी करके बड़ा आदमी बनना तथा समाजमें पूजित होना चाहता है।

इसी प्रकार आज संयमका तिरस्कार हो रहा है। जहाँ हमारी गृहदेवियोंका आदर्श सीता, सावित्री, लोपामुद्रा, अनसूया, सुकला-सरीखी त्यागमूर्ति पतिव्रता सतियाँ, कौसल्या, सुमित्रा, विदुलाके समान माताएँ, मैत्रेयी, गार्गी, विश्ववारा, अपाला, चूडाला-सरीखी ज्ञानमूर्तियाँ और दुर्गावती, लक्ष्मीबाईके सदृश वीराङ्गनाएँ थीं, वहाँ आज सिनेमा-संसारकी विलासविभ्रम-रता, यथेच्छाचारिणी नर्तकियाँ आदर्श हो रही हैं। सीता-सावित्रीका उपहास होता है, सतीत्वको कुसंस्कार बताया जाता है, सीता-सावित्रीके सच्चे इतिहासोंको स्त्रियोंकी स्वतन्त्रताका अपहरण करनेके लिये पुरुषोंद्वारा गढ़ी हुई कहानियाँ कहा जाता है और केवल नृत्य, गीत, अभिनयकलाको ही आर्य-संस्कृतिका मुख्यरूप बताकर हमारी बहू-बेटियोंको उसी ओर लगाया जाता है और उनके मनमें सिनेमाकी नर्तकी बननेकी अदम्य लालसा उत्पन्न की जाती है। इसके तीन प्रधान कारण हैं—पहला सम्मान, दूसरा प्रचुर अर्थकी प्राप्ति और तीसरा असंयमकी छूट।

सिनेमाकी नर्तकियोंका प्रायः सर्वत्र सम्मान होता है, उनके आचरण तथा व्यवहारकी ओर जरा भी न देखकर उनके शरीर-सौन्दर्य, सुरीले स्वर और अभिनय-चातुरीको सबसे बड़ी बात मानी जाती है। हमारे राष्ट्रपति तथा देशके प्रधान मन्त्रीतकसे वे अबाध मिल सकती हैं, उनके साथ उनके छाया-चित्र उतरते हैं और उनके छायाचित्रोंको समाचार-पत्रोंके मुखपृष्ठोंपर छापा जाता है। उनका सभी क्षेत्रोंमें आदर होता है। संत-महात्माके दर्शनोंके लिये शायद कोई भी अध्यापक, तरुण विद्यार्थी या व्यापारी इतना लालायित नहीं रहते, परंतु किसी सिनेमाकी नटीके दर्शनार्थ हजारोंकी भीड़ इकट्ठी हो जाती है और दर्शन न मिलनेपर उपद्रव करने लगती है। देश-विदेशोंमें उनका नाम होता है और उनके चित्रोंसे घर सजाये जाते हैं। वोट लेनेके लिये भी उनका उपयोग किया जाता है।

सीना, पिरोना, कसीदे काढ़ना, मोजे-गंजी बुनना, खाद्य-

पदार्थोंका निर्माण करना तथा अन्यान्य गृहशिल्पकी शिक्षा इसीलिये लड़कियोंको दी जाती थी कि जिसमें वे स्वयं इन निर्दोष कामोंको करके घरकी आवश्यकताको बिना खर्चके पूरी कर सकें और कभी विपत्तिमें पड़नेपर इन निर्दोष कामोंके द्वारा अपनी आजीविका भी चला सकें, परंतु नृत्य-गीत ऐसी चीज है जो मनोरञ्जनकी वस्तु है तथा ललित कलाके नाते आदरणीय भी है, परंतु उसके द्वारा आजीविका चलानेका काम तो नृत्य-गीत-वृत्तिके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे होता नहीं, इसीसे मनमें रहता है कि लड़की नृत्य-गीत सीखी हुई रहेगी तो कभी उसे सिनेमामें अवसर मिल सकता है, क्योंकि पैसोंकी आमदनी जितनी सिनेमामें होती है, उतनी किसी भी अन्य छोटे व्यापार या नौकरीमें सम्भव नहीं। यह एक बड़ा आकर्षण है।

तीसरी बात है—असंयमकी। संयम, नियम आदिसे जीवन पवित्र और आदर्श बनता है, परंतु उसके लिये कुछ त्याग करना पड़ता है, मन-इन्द्रियोंको पतनके प्रवाहसे रोकनेके लिये प्रयास करना पड़ता है, परंतु संयम-नियमके त्यागमें और मन-इन्द्रियोंके पतन-प्रवाहके साथ बहनेमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता और जहाँ संयम-नियमके त्यागकी और यथेच्छाचारकी प्रशंसा होती है, वहाँ तो वह और भी प्रलोभनकी वस्तु बन जाता है। सिनेमा-नर्तकी इस संयमहीनताके पथमें होड़ बदकर मानो दौड़ लगाती है। पर-पुरुषका अबाध दर्शन और मिलन ही नहीं, परस्पर अङ्गोंका स्पर्श—वहाँ जरा भी दोषकी बात नहीं मानी जाती। बल्कि उसमें दोष देखनेवालोंकी हँसी उड़ायी जाती है। परिणाम प्रत्यक्ष है। वे नट-नटी इन्द्रिय-विजयी शुकदेव तो हैं ही नहीं। स्खलन सहज है। बड़े-बड़े त्यागी, तपस्वी, संयमी पुरुष भी जब सङ्ग-दोषसे पतित हो जाते हैं, तपस्वी-त्यागियोंके आश्रमोंमें भी दोष हो जाते हैं, तब रात-दिन शृङ्गार-विलासमें रहते हुए इन इन्द्रियाराम प्राणियोंका पतन होना कौन आश्चर्यकी बात है! कहाँ तो यह आदर्श था कि श्रीसीताजी हनुमान्का स्पर्श करना भी पाप मानती हैं और कहाँ हास-विलासमें लगे हुए इन दुर्बल-हृदय मनुष्योंके दिन-रात इस प्रकार साथ रहने और स्पर्श-भाषणादिकी मर्यादाका सहज त्याग करके यथेच्छ आचरण करनेमें भी कोई दोष तो माना ही नहीं जाता, बल्कि उनकी तारीफ की जाती है।

इस प्रकार असंयम और व्यभिचार-प्रवृत्तिका खुले आम आदर-सत्कार और पूजन हो रहा है और इसके फलस्वरूप समाजके प्रायः सभी वर्गोंमें पुरुष-मण्डलके सामने भले घरकी बहू-बेटीके नृत्य-गानमें, परपुरुष और परस्त्रीके अबाध मिलनमें, परस्पर हास-विलासमें, मानस पापवृत्तिके उदयमें कोई दोष या पापकी भावना क्रमशः घट रही है और समाजका चारित्रिक स्तर बड़ी तेजीसे नीचे आ रहा है। लोग धन-मानके लोभमें अपने चरित्रका नाश करनेपर बड़े चावसे उतारू हो रहे हैं।

तीसरा दोष आ गया है—सदाचार और त्यागके तिरस्कारका। हमारे यहाँ आचारको प्रथम धर्म बतलाया गया है, पर आज आचारके त्यागमें ही गौरवका बोध किया जाता है। इसीसे जीवन उच्छृङ्खल तथा अत्यन्त खर्चीला बन गया है। लोग कहते हैं, 'हमें राम नहीं चाहिये, रोटी चाहिये।' बात एक अंशमें ठीक है, रोटी मिलनी ही चाहिये। परंतु रोटीकी कमीका कारण देशमें अन्नका कम उत्पन्न होना नहीं है, उसका प्रधान कारण है हमारा विलासपूर्ण उच्छृङ्खल खर्चीला जीवन। किसी छात्रावासमें या पढ़े-लिखे लोगोंके घरोंमें जाकर देखिये—एक-एक व्यक्तिके लिये पाँच-सात तरहके जूतोंकी पंक्ति लगी मिलेगी। अंग्रेजी ढंगके कोट-पतलून आदि घर-घर मिलेंगे, इन पोशाकोंके कपड़ोंमें ही नहीं, सिलाईमें इतने पैसे खर्च हो जाते हैं कि जितनेमें एक साधारण आदमीका सालभरका सादे वस्त्रोंका खर्च चल सकता है। 'रहन-सहनका स्तर ऊँचा होना चाहिये' इस धारणाने जीवनमें इतनी अनावश्यक आवश्यकताएँ और अभाव पैदा कर दिये हैं कि जिनके कारण खर्च अत्यधिक बढ़ गया है, त्यागकी पवित्र भावनाका तिरस्कार और उपहास होने लगा है तथा सादे जीवन और सादे रहन-सहनवाले लोगोंको मूर्ख, असभ्य और निम्न श्रेणीका समझा जाने लगा है। सादगीको जीवनका नीचा स्तर माननेके कारण सादे जीवन और सादी पोशाकमें लज्जाका बोध होने लगा है, जीवन आडम्बरपूर्ण हो गया है और परिणाममें असदाचार और भोगकी पूजा होने लगी है एवं इस कामोपभोगपरायण जीवनके लिये अर्थकी अनिवार्य आवश्यकता होनेके कारण अन्याय-असत्यसे और चोरी-

हिंसासे अर्थोपार्जनका घोर प्रयत्न होने लगा है। साथ ही यह धारणा दृढ़ हो चली है कि अर्थोपार्जनके लिये भी इस प्रकारके असदाचारी और भोगपरायण जीवनकी आवश्यकता है। इसीके साथ-साथ खान-पानकी मर्यादाका नाश हो चला है। किसी भी मनुष्यके साथ खाना-पीना और किसी भी वस्तुका खाना-पीना सभ्यता तथा सुधारका ही लक्षण नहीं, अर्थोपाजनके लिये भी आवश्यक माना जाने लगा है।

यों आज हमारे भारतीय समाजमें—प्रकारान्तरसे चोर-पूजा, व्यभिचारवृत्तिकी पूजा और असदाचारकी पूजा जोरोंसे होने लगी है और जब समाजमें प्रतिष्ठित, बड़े तथा आदर्श माने जानेवाले त्यागी, धनी, नेता, समाजसेवक और सरकारी अधिकारी ऐसा करते हैं, तब इतर सभी लोग उन्हींका अनुकरण करनेके लिये लालायित और सचेष्ट हों, इसमें क्या आश्चर्य है। हमारे समाजकी यह दशा अत्यन्त ही विचारणीय है। यह प्रवाह यों ही चलता रहा, यों ही पतनको प्रगति माना जाता रहा तो समाज कहाँ जाकर टिकेगा, कौन कह सकता है। चोरी, व्यभिचार, असदाचार कानूनसे बंद नहीं होते, जबतक कि कानून बनानेवाले, कानून माननेवाले और कानूनको मनवानेवाले सभी लोग स्वयं चोरी, व्यभिचार और असदाचारको हृदयसे बुरा न समझें और उनसे घृणा न करें। पर यहाँ तो बात ही दूसरी हो रही है, उलटे कानूनोंके द्वारा ही प्रकारान्तरसे व्यभिचार, चोरी और असदाचारको प्रोत्साहन दिया जा रहा है—वर्तमान सिनेमाका प्रचार-प्रसार और संरक्षण, अत्यधिक कर, विवाह और तलाक-विधान आदिके द्वारा कानूनकी सहायतासे स्त्रियोंकी सतीत्व-मर्यादा, धनोपार्जनकी शुद्ध निर्दोष वृत्ति और मर्यादित सदाचारी जीवनको कितनी ठेस पहुँच रही है, इसपर गहराईसे आज विचार नहीं किया जाता। लोगोंकी मनोवृत्तिमें उच्छृङ्खलताकी उत्पत्ति और एकमात्र भोग तथा अर्थ ही जीवनका परम लक्ष्य है, इस भ्रान्त धारणाके बद्धमूल हो जानेसे आज सभी क्षेत्रोंमें मनुष्यका जीवन अमर्यादित आसुर-जीवनमें परिणत होता जा रहा है और इसका परिणाम मानव-जीवनके लिये कितना दुःखद होगा, भगवान्‌की भाषामें उसे सुनिये और विचारिये तथा उससे बचनेका प्रयत्न कीजिये—

**चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।**
**कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः॥**
**आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः।**
**ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्॥**
**अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः।**
**मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः॥**
**तानहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान्।**
**क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु॥**
**आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।**
**मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥**

(गीता १६। ११-१२, १८—२०)

मरणपर्यन्त रहनेवाली अपार चिन्ताओंसे घिरे हुए, कामोपभोगमें लगे हुए उन्होंने यह निश्चित सिद्धान्त मान लिया है कि कामोपभोग ही जीवनका लक्ष्य है, अतः आशारूपी सैकड़ों पाशोंमें बँधे हुए काम-क्रोधपरायण होकर वे काम-भोगोंकी प्राप्तिके लिये अन्यायपूर्वक अर्थसञ्चय करते हैं एवं अहंकार, (भौतिक) बल, दर्प, काम, क्रोधका आश्रय लिये हुए, दूसरोंमें दोष देखने तथा उनकी निन्दा करनेवाले ये लोग अपने तथा दूसरोंके शरीरमें स्थित मुझ (भगवान्) से द्वेष करते रहते हैं। ऐसे उन द्वेष करनेवाले निर्दय नराधमोंको मैं (भगवान्) संसारमें बार-बार आसुरी योनियोंमें ही पटकता हूँ। भैया अर्जुन ! वे मूढ़ लोग मुझको न पाकर (जिसके लिये उन्हें मानव-जीवन मिला था) जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं और फिर उससे भी अत्यन्त नीच गति (नरकादि) में जाते हैं।

मानव-जीवनकी इस भयानक असफलतासे बचकर मानव-जीवनके प्रधान तथा वास्तविक लक्ष्यकी प्राप्तिका उपाय बताते हुए भगवान् (गीता १६। २१-२२में) कहते हैं—

**त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।**
**कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥**
**एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।**
**आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥**

काम, क्रोध और लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार आत्माको अधोगतिमें पहुँचानेवाले हैं, अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये। भैया अर्जुन ! इन तीनों नरकद्वारोंसे बचा हुआ पुरुष ही अपने कल्याणके लिये आचरण (भगवदाज्ञानुसार व्यवहार और भगवद्भजन) करता है और उससे वह परमगतिको प्राप्त होता है।

# ‘कल्याण’के ग्राहक महानुभावोंसे आवश्यक निवेदन

गत वर्ष (सन् १९९०) अक्टूबर महीनेमें ‘कल्याण’ वर्ष ६४ का आठवाँ अङ्क ग्राहक महानुभावोंकी सेवामें प्रेषित किया गया था, जिसपर कम्प्यूटरद्वारा छापे गये पते प्रान्तोंके क्रमसे चिपकाये गये थे। इस प्रकार पुरानी ग्राहक-संख्या निरस्त कर दी गयी एवं प्रान्तके कोड-नम्बरके साथ नयी ग्राहक-संख्या आवंटित कर दी गयी थी। इसके तुरंत बाद नये विशेषाङ्कका वार्षिक मूल्य मँगाने-हेतु मनीआर्डर-फार्म भेजा गया था। फलस्वरूप पुराने एवं नये ग्राहकोंके रुपये नयी ग्राहक-संख्या (प्रान्तोंके क्रमसे) एवं पुरानी ग्राहक-संख्या (एस० के० ग्राहक-नम्बर) के साथ भारी संख्यामें आने लगे। कई ग्राहकोंके मनीआर्डर ऐसे भी आये, जिनपर ग्राहक-संख्या अङ्कित ही नहीं थी। हमारे यहाँ पुरानी ग्राहक-संख्या निरस्त हो गयी थी, अतः इस प्रकारके मनीआर्डर कम्प्यूटर-विभागको ग्राहक-संख्या खोजने-हेतु भेजे गये। इसी प्रकार ऐसे हजारों पत्र जिनपर पुरानी ग्राहक-संख्या लिखी थी या ग्राहक-संख्या लिखी ही नहीं थी, रुपयोंकी जाँचसे सम्बन्धित आये थे, ऐसे पत्रोंको भी कम्प्यूटर-विभागको ग्राहक-संख्या खोजने-हेतु भेजा गया था, किंतु वहाँपर अत्यधिक कार्य बढ़ जानेके कारण हम पत्रोंके उत्तर चाहते हुए भी न दे सके। उत्तर न मिलनेसे ग्राहकोंको असंतोष होना स्वाभाविक है। हमारी लाचारीको देखते हुए ग्राहक महानुभाव इस असुविधाके लिये हमें क्षमा करेंगे एवं भविष्यमें नयी ग्राहक-संख्या ही लिखकर हमें पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे।

इस वर्षका विशेषाङ्क ‘योगतत्त्वाङ्क’ दो साधारण अङ्कों (मई एवं जून मास) के साथ दिनाङ्क १३-५-९१ से रजिस्ट्रीद्वारा अबतक सभी ग्राहकोंको भेजा जा चुका है। जिन ग्राहकोंको अबतक रजिस्ट्रीद्वारा उपर्युक्त अङ्क न मिले हों, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे हमें वस्तुस्थितिसे तुरंत अवगत करानेकी कृपा करेंगे।

**व्यवस्थापक—‘कल्याण’ पो०-गीताप्रेस, गोरखपुर-२७३००५**

## A Request

It is a matter of great pleasure that English knowing devout public has received the special **Śiva Number** of Kalyana-Kalpataru, whole heartedly. We have got so many letters of appreciation from different readers, from India and abroad which suffice to increase our zeal.

Some copies of the said **Special Number** of Kalyana-Kalpataru still remain in our stock for sale. If each one of its readers undertakes to enlist at least two subscribers of Kalyana-Kalpataru, it will not be only a help of our institution but an excellent deed for expansion of spiritualism.

We would therefore, request our friends to continue to help us by enlisting many more subscribers for the current year.

**The Manager,**
**Kalyana-Kalpataru,**
**Gita Press, Gorakhpur, (India)**

## पुराने विशेषाङ्कोंमें एकमात्र प्राप्य—'मत्स्यपुराणाङ्क' (पूर्वार्ध) सानुवाद

'कल्याण'के ५८वें वर्ष (सन् १९८४ ई०) में प्रकाशित इस विशेषाङ्ककी अब बहुत थोड़ी प्रतियाँ ही बची हैं। अतः इच्छुक सज्जनोंको इसे मँगानेमें शीघ्रता करनी चाहिये।

इस अङ्कमें अनेक महान् साधनों, उपदेशों और उच्च कोटिके आदर्श चरित्रोंका वर्णन है। मत्स्यावतारकी मुख्य कथाके अतिरिक्त इसमें महाराज मनु एवं मत्स्य भगवान्का बड़ा ही रोचक और उपदेशात्मक संवाद है। इसके साथ ही इसमें श्रीकृष्ण-चरित्र, ययाति-चरित्र एवं उनके पुत्रोंका वर्णन है। विविध श्राद्धों, व्रतों, दान, ग्रह-शान्ति एवं विभिन्न तीर्थोंके माहात्म्यसहित तीर्थराज प्रयागकी महिमा और त्रिपुर-वध तथा तारक-वधकी कथाका भी इसमें सविस्तृत वर्णन किया गया है। पृष्ठ-संख्या ४६८, बहुरंगे चित्र १०, सानुवाद, मूल्य डाकखर्चसहित २४.०० रु० (चौबीस रुपये) मात्र।

## 'कल्याण'के गत वर्ष (विक्रम-संवत् २०४७) का विशेषाङ्क 'देवताङ्क'

'कल्याण'के गत ६४वें वर्ष (सौर चैत्र, वि०-सं० २०४७) का विशेषाङ्क—'देवताङ्क' अब कुछ सीमित संख्यामें ही उपलब्ध है। इच्छुक सज्जनोंको चाहिये कि वे मूल्य ४४.०० (चौवालीस रुपये) अजिल्द अथवा ४८.०० (अड़तालीस रुपये) सजिल्दके लिये शीघ्र भेजकर इसे प्राप्त कर लें, अन्यथा पिछले विशेषाङ्कोंकी तरह इसके भी शीघ्र समाप्त हो जानेपर उन्हें निराश होना पड़ सकता है।

इस अङ्कमें देव-संस्कृति और देवता-विषयक तात्त्विक महत्त्वपूर्ण सामग्रीके अतिरिक्त देव-चरित्र-सम्बन्धी अनेक रोचक कथाओं एवं वैदिक तथा पौराणिक सुरस आख्यानोंका भी सुरुचिपूर्ण समावेश किया गया है। पृष्ठ-संख्या ४०८, बहुरंगे चित्र ९, सादे चित्र ९२, रेखा-चित्र ६ तथा सुन्दर, आकर्षक बहुरंगे आवरणसे युक्त यह विशेषाङ्क अपने प्रतिपाद्य विषयकी उपादेयता और गुणवत्ताके कारण सर्वथा संग्रहणीय एवं नित्य पठनीय और मननीय है।

## चालू वर्ष (वि०सं० २०४८) के विशेषाङ्क 'योगतत्त्वाङ्क'के ग्राहक बनिये

इस अङ्कमें योगकी परिभाषा, महत्त्व, स्वरूप-तत्त्व एवं योग-साधनाके सभी अङ्ग-उपाङ्गोंके विवेचनके साथ सुप्रसिद्ध योग-सिद्ध महात्माओं और साधकोंकी योगमय चर्याओं एवं साधना-पद्धतियोंका वर्णन भी उपादेय तथा रोचक सामग्रीके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। पृष्ठ-संख्या ४०८, बहुरंगे चित्र ९ एवं अनेक सादे चित्र हैं। वार्षिक शुल्क ५५.०० (पचपन रुपये) अजिल्द एवं ६०.०० (साठ रुपये) मात्र सजिल्द विशेषाङ्कके लिये है। कृपया शुल्क मनीआर्डर अथवा बैंक-ड्राफ्टद्वारा अग्रिम भेजकर इच्छुक महानुभाव इसके स्वयं ग्राहक बनें एवं अपने इष्ट-मित्रों और परिचितोंको बनायें।

## 'भक्त-चरिताङ्क'का पुनर्मुद्रण

लगभग ३९ वर्ष पूर्व (जनवरी, सन् १९५२ ई०) में 'कल्याण'के २६वें वर्षके विशेषाङ्कके रूपमें 'भक्त-चरिताङ्क' प्रकाशित हुआ था, जो अत्यधिक रोचक, सरस और शिक्षाप्रद होनेसे नितान्त लोकप्रिय हुआ। उस समय इसके शीघ्र समाप्त हो जानेके कारण बहुसंख्यक जिज्ञासुजनों और अनेक प्रेमी पाठकोंका इसके पुनर्मुद्रणका प्रेमाग्रह निरन्तर बना रहा, जिसे दृष्टिगत रख भगवत्कृपासे अब उसी 'भक्त-चरिताङ्क'का यथावत् ग्रन्थाकारमें पुनर्मुद्रण किया गया है। इसमें अनेकों भक्तोंकी विभिन्न, विचित्र भक्तिपूर्ण भावोंकी ऐसी पवित्र मधुर कथाएँ हैं, जो मानव-हृदयको भक्ति-सुधा-रससे सराबोर और अभिभूत कर देती हैं। ये चरित-कथाएँ भगवद्विश्वासको बढ़ानेवाली और भगवच्चरणारविन्दोंमें प्रीतिका प्रादुर्भाव करा देनेवाली हैं। पृष्ठ-संख्या ८०८, बहुरंगे चित्र २५, सादे चित्र २०१, मूल्य ६०.०० (साठ रुपये) मात्र तथा डाकखर्च ८.०० (आठ रुपये) अतिरिक्त। इस प्रकार कुल ६८.०० (अड़सठ रुपये) मात्र भेजकर इसे प्राप्त कर सकते हैं।

इस अङ्ककी अधिक प्रतियाँ (थोकरूपमें) 'गीताप्रेस' पुस्तक-विक्रय-विभाग, पो० गीताप्रेस, गोरखपुरके पतेसे मँगानेपर नियमानुसार १५% कमीशन भी दिया जायगा। सीमित संख्यामें मुद्रित होनेके कारण इसके शीघ्र समाप्त हो जानेकी सम्भावना है। अतः इच्छुक सज्जनोंको मँगानेमें शीघ्रता करनी चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५